मिथक दर्शन का विकास

डॉ० वीरेन्द्र सिंह

स्मृति प्रकाशन
१२४, शहराराबाग, इलाहाबाद-

लेखक

मूल्य सजिल्द पचीस रुपये
संस्करण प्रथम, १९८४ ई०   अजिल्द पन्द्रह रुपये

प्रकाशक
स्मृति प्रकाशन
१२४, शहरारा बाग
इलाहाबाद—२११००३

मुद्रक
स्टार प्रिन्टर्स
२८७, दरियाबाद
इलाहाबाद—३

(MITHAK DARSHAN KA VIKAS)

समर्पण

•

पिता तुल्य

जगदीश मामा

को

जिनके स्नेहिल सरक्षण में

मैंने शिक्षा एव ज्ञान

अर्जित किया ।

प्राक्कथन



डॉ० वीरेन्द्र सिंह को मैं मन से बहुत स्नेह करता हूँ। डा० सिंह हिन्दी के सुपरिचित विद्वान् हैं। इनकी कई उच्च स्तरीय पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। विद्वानो ने उनकी प्रशसा की है। इनकी कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं—हिन्दी कविता म प्रतीकवाद का विकास, प्रतीक दर्शन, विज्ञान दशन आदि।

इनमे लेखक का दर्शन के प्रति आग्रह यह सकेत करता है कि इन्हे तत्व मथन म विशेष रुचि है। इसके लिए तत्व मथन करते हुए गहरी से गहरी पैठ करनी पडती है, यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। मैं इनसे अवस्था मे तो बडा हूँ किन्तु अपने यहा जैसा माना जाता है कि ज्ञान वृद्ध को विशेष आदर प्रदान किया जाता है। अत मैं यहा पर निसकोच कहना चाहूँगा कि जिन विषया पर डॉ० वीरेन्द्र सिंह ने लिखा है, उन विषयो से मेरी दृष्टि से ये वयोवृद्ध हैं। इसके साथ ही मैं इनकी लगन और साहित्यिक निष्ठा को और भी अधिक महत्वपूर्ण मानता हूँ क्योकि ये जिस समय से राजस्थान विश्व-विद्यालय मे प्रवक्ता के पद पर आरूढ हुए हैं, तब से ये निरन्तर साहित्य सेवा के व्रत के व्रती रहे हैं और 'सन्दर्भ' जैसी सस्था को चलाने मे भी इन्होने किसी भी प्रकार का शैथिल्य नही दिखाया। इससे ज्ञान-विज्ञान के प्रेमिया का एक अच्छा समूह इनके साथ इस साहित्य और ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र मे जुटे हुए है। मेरी दृष्टि मे यह बहुत महत्वपूर्ण कार्य है।

मैं यहा डॉ० वीरेन्द्र सिंह जी का प्रशस्ति लिखने नही बैठा हूँ। मुझे तो उन्होने अपनी नयी कृति 'मिथक दर्शन' पर प्राक्कथन (फारवर्ड) लिखने का आदेश दिया है। यह प्राक्कथन लिखने से पूर्व मेरे लिए यह आवश्यक हो गया है कि इनका जो वैशिष्ट्य है उसकी ओर पाठक का ध्यान आकर्षित कर सकू, क्योकि यह आकर्षण उनके कृतित्व की ग्राहकता के लिए मेरी दृष्टि म प्रथम सोपान है।

अब इनकी प्रस्तुत पुस्तक है—'मिथक दर्शन का विकास' ऐसी मिथक दर्शन विषयक पुस्तक मे सबसे पहला प्रयास लेखक और विचारक का यही होगा कि वह मिथक की परिभाषा देने का प्रयत्न करे। यद्यपि डा० वीरेन्द्र सिंह जी यह मानते हैं कि किसी की परिभाषा देना पूरी तरह सम्भव नही है।

फिर भी, वस्तु को समझाने के लिए कुछ न कुछ तो करना ही होता है, ऐसा ही प्रयत्न इस कृति मे भी किया गया है।

लेखक ने एक प्रकार से मिथक और मिथ मे कोई अन्तर नही किया और यह स्वाभाविक ही है कि आरम्भ मे इतना ध्यान मिथक पर नही गया जितना मिथ पर। मिथ पर हमने भी जो लिखा है, उसे इस प्रसग मे यहाँ उद्धृत करना समीचीन प्रतीत होता है। 'लोकवार्ता की पगडण्डियाँ' से हम यहाँ उद्धरण दे रहे हैं—

'रेने वालेक और आस्टिन वारेन ने' थ्योरी ऑफ लिटरेचर' मे बताया है कि 'मिथ' जो कि आधुनिक आलोचना का एक प्रिय शब्द है, अर्थ के एक महत्वपूर्ण क्षेत्र की आर सकेत करता है और उसी पर छाया रहता है। अर्थ का यह महत्वपूर्ण क्षेत्र धर्म (Religion) लोकवार्ता, नृतत्व समाज शास्त्र मनो विश्लेपण तथा ललित कलाओ द्वारा समान रूपेण उपयोग म आता है।

प्रतीकवाद को एक परिभाषा देने का प्रयास करते हुए विलियम के० विमसैट तथा क्लेण्टन ब्रुक्स अपने ग्रथ 'लिटरेरी क्रिटिसिज्म ए शार्ट हिस्ट्री' मे लिखते है—

Whether a real school of symbolism ever existed, remains a problem of speculation, Each poet developed and represented a single aspect of an aesthetic dectrine that was perheps too vast for one historical group to incorporate But more than on any other article of belief, the symbolist, united with Mallarme in his statements about poetic language The theory of the suggestiveness of words comes from a belief that a primitive language, half forgotten, half living, exists in each man It is a language possessing extra ordinary affinities with music and dreams (Mallarme p 26)

इसमे आये (Primitive language, half forgotten, half living) पर विशेष चर्चा करते हुए लिखते है कि मल्लार्मे ने जब ये शब्द लिखे थे तब से अब तक आधुनिक अर्थात् हमारे समय तक (prelogical and primitive mind) या आदिम मानस म जा रुचि नृतत्व अथवा गूढ-मनोविज्ञान (depth psychology) मे सवर्द्धित हुई है उसने ही मिथ को विशेष महत्व प्रदान कर दिया है, आज के युग मे क्योंकि मिथ को ही (a primitive language, half forgotten, half living) के रूप मे स्वीकार किया जाता है।

अरस्तू म मिथ का अर्थ है कथा या कहानी (A Narration, story, a fable) किन्तु 'मिथ' को जो महत्व धर्मों और भाषाओं मे मिला हुआ है उससे इसम अर्थ-वैविध्य और महान् अर्थ क्षमता की सम्भावनाये सिद्ध होती हैं। फलत मिथ कहानी के रूप म ता है, पर उसम प्रतीकात्मकता भी है और उसका सम्बन्ध एक छोर पर लोक मानस के आदिम स्तर स जुडा हुआ है। अत मिथ या कहानी स्वय आदिम भाषा का एक रूप है जिसम जितने ही बिम्ब प्रतीको के रूप क शब्द हैं।

मिथ के कितने ही पर्यायवाची बताये जाते हैं---डा० एल० पी० विद्यार्थी ने बताया है कि श्रीमती डी० एन० भागवत ने अपनी पुस्तक 'एन आउट लाइन आफ इण्डियन फाकलार' (१९५८) म पुराण कथा शब्द को अस्वीकार करके दैवत कथा नाम स्वीकार किया है। पुराण कथा का पयाय के रूप म अपना महत्व है और इसी को पुराख्यान भी कहा गया है। 'पुरा' शब्द की अर्थवत्ता पुरातत्व के उपसर्ग 'पुरा' से ग्रहण की जाय तो यह एक अलग ही महत्व ग्रहण कर लेगा। किन्तु हम 'मिथ और 'मिथक' के पयायवाची हिन्दी शब्द ढूढने की आवश्यकता नही है क्योकि आज मिथ और मिथक का अपने इसी रूप म स्वीकार किया जा चुका है। यह बात डॉ० वीरेन्द्र सिंह जी के उस ग्रथ के नाम और उसमे आयी चर्चा से भी सिद्ध होती है। तात्पय यह है कि मिथ और मिथक के जहाँ अनक रूप हैं, उन सब पर विशद चर्चा डा० सिंह ने अपनी पुस्तक म की है जो अत्यन्त अभिनन्दनीय मानी जा सकती है। यद्यपि मैं मिथ और मिथक को पर्यायवाची नही मानता क्योकि मिथक यदि शब्द क रूप म देखा जाय तो इसकी अलग सत्ता दिखायी पडती है और इसका सामान्य अर्थ होगा मिथ से सम्बन्धित अथवा मिथ के तत्वा स युक्त जैसे आचाय हजारी प्रसाद द्विवेदी की 'बाण भट्ट की आत्म कथा' शीषक उपन्यास म 'बाराह की मूर्ति' के आख्यान का मिथक कहा जा सकता है। बाराह पृथ्वी के उद्धारकर्ता के रूप म पुराणो और पुराणाख्यानो अथवा दैवत कथाओ मे आया है इसीलिए यह मिथ क अश हुए और उनकी अथवत्ता के एक स्वरूप का ग्रहण करते हुए मूर्ति रूप म प्रतिष्ठापित होकर एक विशेष अथ सन्दभ म ये मिथक हो गये है। केवल मिथ नही रहे। जो भी हो, डा० सिंह की तरह मिथ और मिथक को पर्यायवाची मान भी लिया जाय तब उन्होने जिस रूप म इनका अपने इस ग्रथ म प्रस्तुत किया है उस रूप म चित्र मिथ और मिथक के पारस्परिक अन्तर का झगडा खडा किये बहुत ही दार्शनिक रूप म इनके स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

यही कारण है कि जब इस ग्रंथ का पढ़ना पाठन आरम्भ करता है तो वह मिथ और मिथक की समस्त अर्थवत्ता के विविध रूपों में स्थूल से चलकर गहरे अर्थों तक पहुँच जाता है।

वास्तविक समस्या यह है कि मिथ और मिथक का प्रयोग जिस रूप में आज हमारे यहाँ होता है उस रूप को ही समझने के लिए इतनी विशद् पैठ की आवश्यकता है। क्योंकि आधुनिक साहित्यकार जब मिथ और मिथक का अपनी कृतियों में प्रयोग करते हैं तो इसलिए करते हैं जो अर्थ सामान्यतः किसी शब्द सगठन से नहीं मिलते वे अर्थ एक मिथ और मिथक के प्रयोग से प्राप्त हो जायँ। केवल वही अर्थ नहीं जो सामान्यतः प्रयुक्त मिथ या मिथक से झलकता है वरन् वह सभी अर्थ भी जो कि उस झलकते अर्थ स्वरूप से भी ऊपर ध्वनित होता है और इसको समझने के लिए जिस दर्शन की आवश्यकता है वह डॉ० वीरेन्द्र सिंह जी की इस पुस्तक में विद्यमान है। मेरा विचार है कि मैंने लोकवार्ता में अर्थ तक पहुँचने के लिए जो अभिधा, लक्षणा, व्यंजना के अतिरिक्त कुछ अन्य शक्तियों की आवश्यकता बतायी थी और उन शक्तियों पर विस्तृत चर्चा भी की थी, उसे मिथ के सम्बन्ध में भी स्वीकार किया जा सकता है। इसको स्पष्ट करने के लिए मैं 'लोकवार्ता की पगडण्डियाँ में से कुछ अंश यहाँ उद्धृत करना समीचीन समझता हूँ—

भाषा के अध्ययन की तीन प्रणालियाँ मानी जा सकती है यथा तुलनात्मक (Comparative) ऐतिहासिक (Historical) तथा विवरणात्मक ये तीनों ही प्रणालियाँ लोकवार्ता के लिए अपेक्षित हैं किन्तु भाषा विज्ञान को वैखरी तक ही अपनी सीमा रखनी पड़ती है किन्तु लोकवार्ता को पश्यन्ती और ऊपर तक पहुँचना पड़ता है। लोकवार्ता मानव की अभिव्यक्ति में पद से नहीं पदार्थ अर्थात् पदगत अर्थ से भी सम्बन्धित है। लोकवार्ता के पद = निर्णायक तत्व के अर्थ भाषागत अर्थ की भाँति अभिधा, लक्षणा व्यंजना शक्ति से ही प्रकट नहीं होते अपितु इनके अर्थ के लिए इनके अतिरिक्त कुछ अन्य शक्तियों की भी आवश्यकता होती है। इन्हें हम ये नाम दे सकते हैं—

(१) सन्दभभिधा अथवा सस्कारार्थ।

(२) सम्बोधि अथवा तुलनापूर्वक प्राप्त भेद में अभेद तत्व विषयक बोध।

(३) बोधन मात्रा सम्बोधि का प्राप्त अर्थ या महत्व को परम्परा प्राप्त अशगत अर्थ मूल स्थापित (Archetype)।

(४) बोधममात्रा बोधतनमात्रा की मूल मानसगत तात्विकता।

(५) अक्षराव यतास्या-बोधम मात्रा से प्राप्त अथ का सम्ब ध मानव मात्र की अद्वैत स्थिति से है और उससे प्राप्त अथ या सार्थकतादायक शक्ति।

प्रथम तीन का पश्यति और मध्यमा से सम्ब ध माना जा सकता है और अ तिम दो का सम्ब ध पुरावाणी के समकक्ष तत्व से है।

ऊपर के उद्धरण मे पुरावाणी का उल्लेख किया गया इसका सम्ब ध जितना लोकवार्ता से है उतना ही मिथ से है क्याकि मिथ का भी सम्ब ध लोकवार्ता से जुडा हुआ है और इस सम्ब ध का मनोतात्विक अर्थ भुग के सामूहिक अवचेतना से भी प्राय ठीक बैठ जाता है।

यह इसलिए कुछ कम आश्चय की बात नही है कि डॉ० वीरे द्र सिंह ने इस पुस्तक म इस समस्त अर्थवत्ता का प्रकट करने के लिए इन समस्त तत्रा को पूण प्रासगिकता के साथ-साथ चर्चा मे सम्मिलित किया है। इसी को बताने के लिए उनके इस ग्र थ से एक उद्धरण देना आवश्यक प्रतीत होता है। इस उद्धरण से डा० वीरे द्र सिंह जी की मियक विषयक अर्थ बाघ का वह समग्र रूप हमारे सामने आ जाता है जिसका उद्घाटन उ होने इस ग्र थ मे किया है जो उनके मनस्लाक को 'एक सूनता' प्रदान करते हैं। डा० सिंह की मा यता है—'दूसरे शब्दो मे मिथक चेतना म स्वप्न और यथार्थ का, विचार और कल्पना का वास्तविकता आर फैन्टेसी का तथा शिव और अशिव का एक ऐसा 'घोल' प्राप्त होता है जिसे कदाचित् अलग करके देखा नही जा सकता ह। यही कारण है कि मिथ का अर्थ प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष है, वह अनेक प्रकट के बिम्बो और प्रतीका से आच्छादित करता है, अत मिथ के तात्विक अर्थ को स्पष्ट करने के लिए इन रूपाकारा (बिम्बा और प्रतीको) को सही परिप्रेक्ष्य म विवेचित करना आवश्यक है। यह काय दाशनिक एव तत्ववेत्ता का है कि वह इस परोक्ष अर्थ को उद्घाटित करे, और यह परोक्ष अर्थ या व्यापक अर्थ एक समग्र एव समष्टि दृष्टि के द्वारा ही सम्भव है।'

इसी उद्धरण से यह भी प्रकट हाता है कि लेखक मिथ या मिथक के दर्शन को क्या आवश्यक समझता है। वस्तुत मिथक विपय के समस्त तत्र को स्पष्ट करने के बाद भी उसके गहराई मे बैठने की आवश्यकता प्रतीत हाती है। बिना गहराई म बैठे हुए मिथक का पूण स्वरूप स्पष्ट नही हो सकता।

यह तो यथार्थ है कि लेखक ने मियक के समग्र स्वरूप को उनके प्रकारो का स्पष्ट करते हुए भी गहराई म पैठकर मिथक की तात्विकता को भी उद्-घाटित किया है किन्तु इसम भी कोई सदेह नही कि मिथक को भली प्रकार

समझने और समझाने के लिए डॉ० वीरेन्द्र सिंह जी ने श्लाघ्य प्रयत्न किया है और उसकी दार्शनिक व्याख्या करने और गहरी पैठ करने में भी अपनी क्षमता को भी भली प्रकार प्रदर्शित किया है। फिर भी यह सत्य है कि इस विषय पर वे अभी और बहुत कुछ लिख सकते थे। वस्तुत यह ग्रन्थ तो मिथक विषयक उनके दार्शनिक चिंतन की एक भूमिका मात्र ही है। हाँ यह अवश्य है कि यह भूमिका मात्र भी विषय का उद्घाटन करने में पूरी तरह समर्थ है। मैं समझता हूँ कि इस पुस्तक का अध्ययन करने और मनन करने के बाद हिंदी पाठक एक कृतार्थता का अनुभव करेंगे क्योंकि इनके द्वारा वे शब्द और अर्थ के भाषा वैज्ञानिक स्तर से उठकर उस प्रभा मण्डल के पार भी झाँक सकेंगे जिस प्रभा मण्डल में बिम्ब प्रतीक आदि अर्थ उपादानों से भी ऊपर ध्वनित अर्थ के साथ मानव के लोक मानस से सयुक्त मूलस्थपिता की प्रक्रिया के माध्यम से टेबू (वर्जन) टाटम (तत्वम) की छायाओं में से जाते हुए उस प्रकाश तक पहुँच सकेंगे जिससे मिथ का रहस्य किसी सीमा तक खुल सकेगा और उसको आवृत्त करने वाले दैवी और पावनता के आवरण के कारण भी स्पष्ट हो सकेगा।

तात्पर्य यह है कि इस छोटी-सी पुस्तक में गागर में सागर की तरह लेखक ने वह सब भर दिया है जिससे मिथ या मिथक की अर्थवत्ता के विविध पहलू समझे जा सकते हैं और इस अर्थवत्ता के साथ जुड़े हुए विविध स्तर और प्रकार तथा उनके उद्भव, विकास, प्रचार और प्रमाद आदि सभी पक्षों पर प्रकाश इसमें डाला गया है। मिथ या मिथक से सम्बन्धित कितने ही विवाद जब तब उठे हैं, उन सभी का विद्वान लेखक ने किसी न किसी प्रकार से और किसी न किसी रूप में समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। अत मेरी दृष्टि में आज की साहित्य सृष्टि में जहाँ तहाँ गुम्फित मिथकों के कारण अर्थ ग्रहण में जो बाधाएँ उत्पन्न हो जाती हैं, उन सबका रहस्य खोलने की कोई न कोई कुंजी इस पुस्तक में पाठक को उपलब्ध हो सकती है। क्योंकि इसमें मिथक के सम्यक् दर्शन को प्रस्तुत करने का सम्यक् प्रयत्न किया है इसलिए महाकाव्य काल से आज तक जो सृजन काव्य और साहित्य का पनपा है, उनमें जिन चीजों से मिथक अपना रूप ग्रहण करता है, उन सबकी भाषा विषयक, मनोविज्ञान विषयक मनोमूल मूलस्थपित (आर्कीटाइप) जैसे तत्वों से मिथक् को जो महत्व मिलता है, उस पर भी कुछ न कुछ प्रकाश इसमें लेखक ने डाला है। इस दृष्टि से मैं इस पुस्तक को उपयोगी मानता हूँ और मैं समझता हूँ कि पाठक को भी यह उपयोगी प्रतीत होगी।

पुन —स्व० डा० सत्येन्द्र ने मृत्यु के कुछ दिन पूर्व अपना यह अन्तिम आलेख इस पुस्तक के लिए लिखा था। अत इस आलेख का महत्व मेरे लिए तो सदा ही रहेगा, पर हिंदी जगत के लिए भी इसका महत्व होना चाहिए।

—डॉ० सत्येन्द्र

लेखकीय

जब कोई भी लेखक किसी विषय का निर्वाचन करता है, उस समय उसके सामने दो प्रमुख तत्व होते हैं जिनके आधार पर वह किसी निर्णय तक पहुँचता है। एक तत्व जो सबसे महत्वपूर्ण है कि उस विषय पर कितना कुछ लिखा गया है अथवा व्यवस्थित रूप से उस पर कितना चिन्तन हुआ है ? यदि इस दिशा मे कम लिखा गया है या नहीं लिखा गया है, तो लेखक उस ओर अग्रसर होता है। दूसरा तत्व यह है कि उस विषय-विशेष पर लेखक क्या कुछ नया जोड़ सकता है जो ज्ञान और चिन्तन की गतिशीलता को आगे बढ़ा सके। दूसरे शब्दो मे हमारे 'सोच' को व्यापक बना सके – विषय के नकारात्मक और सकारात्मक दोनो पक्षो का तटस्थ विश्लेषण कर, हमारे चिन्तन को एक मुक्त एव तटस्थ परिप्रेक्ष्य प्रदान कर सके।

उपर्युक्त तत्वो को ध्यान मे रखकर मैंने 'मिथक-दर्शन' पर कुछ व्यवस्थित रूप से लिखने का प्रयास मात्र किया है जो निश्चित रूप से अन्तिम नहीं है। हिन्दी के सन्दर्भ मे यह कहा जा सकता है कि अभी तक मिथक पर जो कुछ भी लिखा गया, वह या तो उसके मनोवैज्ञानिक पक्ष को लेकर या सामाजिक अथवा भाषिक सन्दर्भों को लेकर, लिखा गया है। जो मिथक विवेचना के एक या दो पक्षो से अधिक सम्बन्धित रहा है। एक वर्ग वह है जो मिथक से साहित्यिक रूपान्तरण को वैचारिक युग बोध तथा वैचारिक सन्दर्भों के प्रकाश मे विवेचित एव रेखांकित करता है। इस दृष्टि से डॉ० रमेश कुतल मेघ, डॉ० शम्भुसिंह, डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, इन्द्रनाथ चौधुरी, नगेन्द्र तथा डॉ० सत्येन्द्र आदि का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने मिथक को एक या दो दृष्टियों से ही विवेचित किया है, उसका सर्वाङ्गीण एव ऐतिहासिक सांस्कृतिक विवेचन एव विश्लेषण नहीं किया है शम्भुसिंह तथा इन्द्रनाथ चौधुरी ने यदा-कदा आधुनिक मिथकों की रचना-प्रक्रिया पर विचार अवश्य किया है, पर वह भी सांकेतिक रूप मे। इस विहगम दृष्टि के प्रकाश मे मैंने यह पाया है कि मिथक का एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विवेचन अपेक्षित है जो समग्र रूप से मिथक दर्शन के व्यापक क्षेत्र को रेखांकित कर सके।

यही कारण है कि मैंने मिथक विवेचन के स्थान पर मिथक-दर्शन का प्रयोग किया है क्योंकि 'दर्शन' शब्द के द्वारा किसी भी वस्तु का एक वैचारिक

गतिशील रूप ही सामने नहीं आता है, पर वस्तु का एक समग्र तात्त्विक रूप उभर कर सामने आता है। मैंने मिथक रूपों के इसी तात्त्विक रूप को ही रेखांकित करने का प्रयत्न किया है, इसे स्वीकार करते हुए कि इस पर विचार भी हो सकता है जो ज्ञान की गतिशीलता के लिए एक आवश्यक तत्व है। एक लेखक और रचनाकार के लिए यह मत वैभिन्य उसकी ज्ञानात्मक गति-शीलता के लिए अपेक्षित है जो सदैव उसे आत्म निरीक्षण एवं रूपान्तरण की ओर ले जाती है, यदि वह उसे पूर्वाग्रह के रूप में स्वीकार न करे।

मिथक, सांस्कृतिक प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है और साथ ही मानव के ऐतिहासिक विकास-क्रम का, उसकी मानसिक विकासशीलता की सापेक्षता में रेखांकित करता है। इस दृष्टि से, मैंने आदिम या प्राचीन मिथकों का विवेचन विकास क्रम की सापेक्षता में स्वीकार किया है और आधुनिक मिथकों की रचना-प्रक्रिया को उससे एक सामान्य स्तर पर जोड़ने का प्रयत्न किया है। यह सम्भावित है कि इस दुरूह कार्य में मिथक का परम्परित अर्थ खण्डित हुआ हो क्योंकि मैं यह मानता हूँ कि किसी भी शब्द और प्रत्यय का अर्थ एक नहीं रहता है वह भी ज्ञान और संवेदना के विकास के साथ विकसित होता है एवं एवं नयी अर्थ-छवियाँ ग्रहण कर लेता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि पारम्परिक अर्थ पूर्णतया विलुप्त हो जाता है। पर उसका स्पन्दन शेष रहता है जो उस शब्द या प्रत्यय-विशेष की परम्परा से जोड़ भी रखता है। अत मिथक के स्वरूप-विवेचन में यह तथ्य ध्यान में रखा गया है और इसी क्रम में उसके ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विकास-क्रम को प्रस्तुत किया गया है।

यह विकास क्रम, एक व्यापक सन्दर्भ मे, मिथक को एक ज्ञानात्मक प्रक्रिया का अंग बनाता है जो मानव की 'विचारणा' से भी सम्बन्धित है। यह वह स्थिति है जहाँ मिथक और भाषा प्रतीकों का एक सापेक्ष सम्बन्ध है। मिथकीय सृजन और उससे सम्बन्धित ज्ञान का स्वरूप एक ऐसी 'भाषा' का सृजन करता है जो मिथकीय अभिप्रायों और संकल्पनाओं का 'रूपाकार' दे सके जो वस्तु और भाव-संवेदना का एकीभूत संस्कार कर सके। मैंने भाषिक रूपाकारों को इसी अर्थ में ग्रहण किया है और उन्हें मिथकीय संकल्पनाओं और अभिप्रायों का वाहक माना है जिसका एक अपना ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक क्रम है।

यह तो मेरी बात हुई, पर किसी भी कृति या ग्रन्थ का असली मूल्यांकन पाठक एवं आलोचक वर्ग ही करता है, जो तटस्थ भाव से उसके नकारात्मक और सकारात्मक पक्षों का उद्घाटन करता है। मैं इस 'उद्घाटन' को

आवश्यक समझता हूँ क्योंकि इसके द्वारा लेखक अपने को विकसित करता है। पूज्य डॉ० सत्येन्द्र ने पुस्तक का प्राक्कथन लिखकर मुझे इसी 'विकास' की ओर गतिशील किया है।

उनके स्नेह और प्रोत्साहन के लिए मैं सदा आभारी रहूँगा यह सब शायद नहीं ही होता, यदि स्मृति प्रकाशन के संचालक श्री बालकृष्ण त्रिपाठी मेरे श्रम को साकार करने में सहायक न होते क्योंकि उनकी 'दृष्टि' का ही यह परिचय है जिन्होंने पुस्तक की उपादेयता को समझ कर उसे प्रकाशित किया। अन्त में डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का आभारी हूँ जिन्होंने पुस्तक लेखन और प्रकाशन में मुझे पूरा सहयोग दिया और साथ ही मेरे विचारों की द्वन्द्वात्मकता को गतिशील किया।

—वीरेन्द्र सिंह

जयपुर
१५ अप्रैल, १९८३

विषय-क्रम

प्राक्कथन ५—१०
लेखकीय ११—१३

प्रथम खण्ड
(परिभाषा, क्षेत्र एवं व्याख्या-पद्धतियाँ)

(१) मिथक की परिभाषा और क्षेत्र १—७

परिभाषा के घटक तथा उनका क्षेत्र, मिथक, मिथ्या और सांस्कृतिक-प्रक्रिया संश्लिष्ट परिभाषा और उसका क्षेत्र, मिथक मिथक और 'इतिवृत', मिथक की 'लाघ-शक्ति', मिथक का क्षेत्र

(२) मिथक की विभिन्न व्याख्याएँ ८—९

प्रवेश एवं पृष्ठभूमि

(३) मिथक की रूपकात्मक व्याख्या १०—१७

मिथक और रूपक-तत्व, भारतीय एवं ग्रीक परम्परा, सूर्य तथा चान्द्र मिथक, भाषा और मिथक

(४) मिथक की मनोवैज्ञानिक व्याख्या १८—३१

मानसिक क्रिया और मिथक का सम्बन्ध, 'मनस्' का विभाजन, सामूहिक अचेतन और मिथक-सृजन, 'महामाता' का मिथक, 'आदिरूप का स्वरूप', कुछ महत्वपूर्ण आदिरूप

(५) मिथक की समाज एवं मानवशास्त्रीय व्याख्या ३२—४४

वस्तुगत व्याख्या का आरम्भ, जडात्मवादी प्रक्रिया, यातुक अनुष्ठान और मिथक, अनुष्ठान एवं सामाजिक संगठन, टोटम वाद और मिथक, टोटम और टैबू, समाज इतिहास और मिथक, संरचनात्मक व्याख्या

(६) मिथक की समग्र तात्विक व्याख्या-दृष्टि ४५—५३

व्याख्या-पद्धतियों का महत्व और मिथक की गतिशीलता, तात्विक-दृष्टि का अर्थ और स्वरूप, अनेक अर्थ-स्तर

द्वितीय खण्ड
(मिथक के कुछ महत्वपूर्ण प्रकार)

(७) प्रवेश ५४—६१

प्रकृति-मिथक, प्रकृति का सन्दर्भ, अग्नि-मिथक, वृक्ष-मिथक, ऋतु-सन्दर्भ, टोटमी मिथ

(८) सृष्टि-मिथक ६२—७८

प्रवेश, 'सम्पूर्णता' का रूप और प्रतीक-सृजन, 'वृत्त' या 'गोलक' की धारणा, शरीर विन्यास का आदिरूप, 'महामाता' का बिम्ब और सृजन तत्त्व, 'विलोम' का सिद्धान्त, 'दिक्' की कल्पना, अवतार की भावना और विकासवाद, त्रिमूर्ति की धारणा और सृष्टि तत्व, जल-प्लावन का मिथक

(९) हीरो-मिथक ७६-८४

पुलिंगीकरण-क्रिया और हीरो का उद्भव, अचेतन और जातिवीर, हीरो की द्विविधि पैतृकता, 'पवित्र कौमार्य' और हीरो का जन्म, पिता-बिम्ब और हीरो, सूर्य और हीरो-मिथ, हीरो का सांस्कृतिक स्वरूप, पिता-बिम्ब का अर्थ और हीरो, 'बन्दी' और 'निधि' के अर्थ, रूपान्तरण-मिथकों का रूप, 'बन्दी' बिम्ब और हीरो-मिथ, 'बन्दी', 'निधि' और 'हीरो' का सापेक्ष तात्विक रूपान्तरण

(१०) आधुनिक मिथक ८५—११६

ऐतिहासिक परिवर्तन और आधुनिक मिथक, आधुनिक-मिथक का स्वरूप, मिथकीय अर्थ व्यवस्था, इतिहास के मिथक, इतिहास-एक गत्यात्मक विचार-मिथक, आधुनिक हीरो-मिथक, अनवादी संस्कृति का मिथक, 'इलीट', 'समूह' और 'मशीन', संस्कृति का प्रजातान्त्रीकरण, युवक और राष्ट्र-मिथक, विज्ञान-मिथक के दो पक्ष, विकासवादी सिद्धान्त, सृष्टि-मिथक, दिक्-काल की धारणा, विस्तरणशील विश्व का मिथ

(११) निष्कर्ष और सम्भावना ११७—११८

परिशिष्ट १२०

नामानुक्रम १२०

शब्दानुक्रम १२१

सन्दर्भ-ग्रन्थ १२३

मिथक की परिभाषा और क्षेत्र | १

१ परिभाषा के घटक तथा उनका स्वरूप

किसी भी प्रत्यय या वस्तु की परिभाषा अपने मे पूर्ण और अन्तिम नही हो सकती है। भाषा की यह शक्ति भी है कि वह परिभाषाओ के द्वारा सत्य और यथार्थ को आकार देने का प्रयास करती है, तो दूसरी ओर, उसकी यह सीमा भी है कि वह 'उसे' अन्तिम एव पूर्ण रूप भी नही दे सकती है। किसी भी 'प्रत्यय' को पारिभाषित करने मे इस प्रकार का विरोधाभास सामने आता है। इस प्रकार परिभाषा के द्वारा किसी भी 'वस्तु' या प्रत्यय (शब्द) के 'मूल' स्वरूप तथा उसमे निहित आवश्यक तत्वो को ग्रहण करने का प्रयास किया जाता है। अत परिभाषा एक प्रकार की सतत गत्यात्मक प्रक्रिया है और यह 'प्रक्रिया' यथार्थ का क्रमिक साक्षात्कार करती है। दिक्, काल, पदार्थ, परमाणु, प्रजातन्त्र, होमो सिम्बालिक्स आदि ऐसे ही प्रत्यय है जिनकी परिभाषाएँ उनकी 'मूल' प्रवृति तथा अन्तर्निहित तत्वो का रेखाकित करती हैं। इसके अतिरिक्त उनके बारे मे यह भी कहा जा सकता है कि ये परिभाषाएँ इसलिए अन्तिम नही है कि नव-ज्ञान की सापेक्षता मे वे गतिशील रहती हैं और यह 'गतिशीलता' ही उन्हे अर्थवत्ता प्रदान करती है। उदाहरणस्वरूप, पदार्थ के स्वरूप को लिया जा सकता है। पदार्थ विश्व का आदि तत्व है, पदार्थ परमाणुओ तथा अणुओ का सघात है, पदार्थ भौतिक है तथा पदार्थ वह अभौतिक तत्व है (नान मैटेरियल) जिसकी ओर मन, सदैव गतिशील रहता है, पर 'उस' तक पूर्ण रूप से पहुँच नही सकता[१]—आदि कथन पदार्थ की प्रवृति तथा उसकी परिभाषा (स्वरूप) के घटक हैं। इन घटको के सघात के द्वारा किसी भी प्रत्यय या 'वस्तु' के स्वरूप तथा उसकी परिभाषा को हृदयगम किया जा सकता है। ज्ञान के नवीन विकास के साथ इन घटको का स्वरूप बदल सकता है, उनमे परिवर्तन और सशोधन हो सकता है, उन्हे नकारा भी जा

१ फिलासफिकल एस्पेक्ट्स आफ माडर्न साइस, सं० सी० ई० एम० जाड, पृ० ८७

सकता है तथा नये प्राप्त निष्कर्षों के द्वारा 'नवीन' घटका का भी समाविष्ट किया जा सकता है। यह सारी प्रक्रिया एक गतिशील प्रक्रिया है जो 'सत्य' के क्रमिक रूप का साक्षात्कार कराती है। इस प्रकार किसी भी 'प्रत्यय' या 'वस्तु' की परिभाषा उसके स्वरूप तथा साथ ही उसके घटकों पर आधारित एक गत्यात्मक प्रक्रिया है जो सत्य और यथार्थ तक पहुँचने का एक आधार है। इससे यह स्पष्ट होता है कि परिभाषा और यथार्थ का एक सापेक्ष सम्बन्ध है—दोनों एक दूसरे के लिए कार्य कारण के समान हैं।

२ मिथक, मिथ्या और सांस्कृतिक प्रक्रिया

मिथ के स्वरूप तथा उसकी परिभाषा को समझने के लिए उपर्युक्त प्रक्रिया को ध्यान में रखना होगा। मिथ या मिथक (मिथक शब्द का सबसे पहले प्रयोग आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने किया था) यह शब्द मूलतः अंग्रेजी का शब्द माना जाता है, पर इससे मिलता-जुलता संस्कृत का शब्द 'मिथ्या' है जिसका मिथ से काफी ध्वनि साम्य है और अर्थ में भी समानता है। पश्चिमी यूरोप तथा अमरीका के विचारकों ने मिथ को इसी अर्थ में लिया है और उसे यथार्थ या वास्तव से भिन्न माना है। डा० प्रेमपति ने अपने एक लेख में यह मत व्यक्त किया है कि भारत में मिथक का इसी अर्थ में ग्रहण किया गया है और एतिहासिकता की दृष्टि से, इधर रामायण और महाभारत में कितना वास्तव है और कितना 'मिथ'—इस बात को प्रमाणित करने का प्रयत्न किया गया है।[1] सत्य तो यह है कि मिथ (पुराण) का यह अर्थ भारतीय विचारधारा के संदर्भ में नितान्त सही नहीं है। पुराण शब्द का अर्थ 'प्राचीन' या 'आदितम' है जो सांस्कृतिक प्रक्रिया में किसी न किसी रूप में जीवित रहते हैं—यह दूसरी बात है कि युग के अनुसार उनमें रूपान्तरण एवं संशोधन हो सकते हैं अथवा होते हैं। फिर, दूसरी बात यह है कि इतिहास की अवधारणा में मानव विकास के बाह्य और आन्तरिक पक्षों का एक द्वन्द्वात्मक स्वरूप प्राप्त होता है, वह केवल भौतिक घटनाओं, नामों तथा तिथियों का समूह मात्र नहीं है। इस अर्थ में मिथ भी एक तरह का इतिहास है। यही कारण है कि मिथक को भारतीय चिंतन में इतिहास ही कहा गया है जो मानव चेतना और भौतिक जगत के सम्बन्ध को उसके आन्तिम रूप में रूपायित करती है।

---

1 मधुमती, आलोचना विशेषांक, जनवरी-फरवरी १९७७, पृ० ४२-४३

मानव विकास की यह परम्परा रही है कि वह जैव और अजैव को एक सम्बन्ध मे बाँधती है और मिथक के प्रतीक, घटनाएँ तथा नाम इस सम्बन्ध को एक-सूत्रता देते हुए प्रतीत होते हैं। इतिहास को इस प्रकार विवेचित करने पर मिथक से उसका एक गहरा एव अर्थवान् सम्बन्ध प्राप्त होता है। उसे 'मिथ्या' या 'आदिम' कहकर इतिहास के कूडेदान म फेका नही जा सकता है। मिथक को आदिम मानसिकता से केवल जोडकर उसके व्यापक सदर्भ का नजरअदाज करना है। मिथक जैसा कि कहा गया है कि सास्कृतिक प्रक्रिया का अभिन्न अग है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक ऐतिहासिक परिवर्तन के साथ मिथको का नया सृजन होता है अत 'आधुनिक मिथक' का अस्तित्व भी एक सत्य है जिसका विवेचन आगे किया जाएगा।

मिथक के उपर्युक्त स्वरूप को ध्यान म रखकर कहा जा सकता है कि मिथक का सम्बन्ध मानव के आदिम एव प्रागैतिहासिक काल से है और व किसी भी जातीय सस्कार मे इतने गहरे पैठे रहते है कि उन्हे मानव अस्तित्व म नकारा नही जा सकता है। मनोवैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियो (मानवशास्त्री भी) भाषाशास्त्रियो तथा दार्शनिको ने मिथक के इसी रूप को विभिन्न दृष्टि-कोणो से विवेचित एव परिभाषित करने का प्रयत्न किया है और मिथको के स्वरूप को समझने म इन समस्त दृष्टिकोणो का अपना-अपना महत्व है जो मानसिकता एव सामाजिकता के विभिन्न धरातलो पर मानव-चेतना के विकास और उसकी समानता तथा असमानता की ओर सकेत करते हैं। इन दृष्टिकोणो का विवेचन अगले अध्यायो म विस्तारपूर्वक किया जाएगा।

३ सश्लिष्ट परिभाषा और उसका स्वरूप

मिथक के उपर्युक्त स्वरूप को ध्यान मे रखकर मिथक की एक सश्लिष्ट परिभाषा देने का यहाँ पर प्रयत्न किया जाएगा। सत्य तो यह है कि मिथक को इस तरह परिभाषित करना कि वह सभी विद्वानो तथा विचारको को स्वीकार हो, अवश्य ही अपने आप म एक कठिन कार्य है और इससे भी अधिक कठिन कार्य है कि वह उन व्यक्तियो के लिए भी स्वीकार्य हो जो इस क्षेत्र के विशेषज्ञ नही है। मिथक एक अत्यन्त जटिल सास्कृतिक सत्य है जो मानव, प्रकृति और विश्व के पवित्र 'इतिहास' को अनेक प्रकार से रेखाकित और विवेचित करता है। इस परिभाषा म उन सभी तत्वो और विवेचनाओं का समन्वय प्राप्त होता है जो एक ओर मिथक के घटक हैं, तो दूसरी ओर मिथक के क्षेत्र एव विस्तार को प्रकट करते हैं।

ब्रिटानिका विश्वकोश में मिथक को एक 'पवित्र' इतिहास की संज्ञा दी गयी है जो आदिकाल की एक घटना है जो अप्राकृतिक व्यक्तियों के कार्यकलापों के द्वारा 'यथार्थ' के अस्तित्व को रेखांकित करती है।[1] यह तत्व मिथक के एक आवश्यक घटक 'अलौकिक कार्यकलापों' से सम्बन्धित है जो आदिकालीन मिथकों में किसी न किसी रूप में प्राप्त होते हैं। इन शक्तियों (दिव्य) का सम्बन्ध प्राकृतिक घटनाओं तथा व्यापारों से जोड़ा गया है जो इस बात को स्पष्ट करते हैं कि आदिम मिथकों ने प्रकृति-शक्तियों का मानवीकरण कर उन्हें मानवीय संदर्भ देने का प्रयत्न किया था। यह सम्बन्ध भी एक प्रकार से 'पवित्र' सम्बन्ध है जो मानवीय चेतना के आदिम विकास से गहरा सम्बन्धित है। यह 'सम्बन्ध' व्यक्ति और प्रकृति के उस 'संवाद' की ओर संकेत करता है जिसमें प्रकृति के प्रति एक जिज्ञासा की भावना है, तो दूसरी ओर उन प्राकृतिक प्रक्रियाओं के प्रति एक 'भय' की भावना भी अन्तर्निहित है। इन दोनों भावनाओं के अन्तराल में एक 'पवित्र' मनोवृत्ति की अन्तर्धारा बहती रहती है। यही कारण है कि सामान्य रूप से, मिथकों की संरचना में इन तत्वों का *न्यूनाधिक समावेश* प्राप्त होता है जिसका विवेचन यथास्थान सविस्तार किया जाएगा।

४ मिथक और इतिवृत्त

यह 'पवित्र-सम्बन्ध' मिथक की संरचना का एक आवश्यक तत्व है और प्राचीन देवगाथा की भावना में यह तत्व इस सीमा तक पाया जाता है कि उनके व्यक्तित्व में जो 'दिव्यता' का प्रभामण्डल प्राप्त होता है, उसका क्रमशः विस्तार अनेक घटनाओं एवं व्यापारों के द्वारा देखा जा सकता है। ये समस्त सम्बन्ध एक साथ मिलकर [illegible] 'वीरों' और प्रतिनायकों का [illegible] बन जाता है। इस प्रकार मिथक की परिभाषा में 'इतिवृत्त' का समावेश भी हो जाता है अथवा दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि एक 'इतिवृत्त' का अंग यह [illegible] प्रभामण्डल है जो विभिन्न भाषाओं का एक [illegible] अंग है। यह दूसरी बात है कि [illegible] के विस्तार एवं स्वरूप में परिवर्तन और परिवर्द्धन हो जाए। इस प्रकार, विभिन्न भाषाओं में [illegible] रूप में पाये जाते हैं — एक [illegible] जिसे 'मिथक' कहा गया है और दूसरा 'इतिवृत्त' जो उस [illegible]

१ ब्रिटानिका विश्वकोश, भाग १५, पृ० ११३३

और घटना के द्वारा अधिक ग्राह्य बनाता है जिससे जन-मानस उसे सरलता से ग्रहण कर सके। इस इतिवृत्त के द्वारा तथाकथित अलौकिक व्यक्तियों के कार्यकलापों से यथार्थ अपने अस्तित्व को व्यक्त करता है चाहे यह अभिव्यक्ति यथार्थ का अंश हो या उसका सम्पूर्ण रूप हो। मिथकीय संरचना में इन दोनों तत्वों का समावेश प्राप्त होता है और इस दृष्टि से, मिथक केवल कथा या गल्प नहीं है (जैसा कि ग्रीक विचारधारा में प्राप्त होता है) वह तो केवल उसका एक अंशमात्र है जो 'प्रभामण्डल' की सृष्टि करता है। ग्रीक विचार-धारा में मिथ को इतिहास और तर्कना से नितान्त विपरीत माना गया है और उसे एक प्रकार से 'जो मूलतः अस्तित्व में नहीं है' का पर्याय माना गया है। ग्रीक मिथकों में देवताओं के कार्यकलापों को (जैसा कि होमर में प्राप्त होता है) अमानवीय और दूषित ठहराया गया क्योंकि वे एक दूसरे को धोखा देते हैं और अनेक प्रकार के दूषित कृत्य करते हैं।[1] देवताओं के इन कुकृत्यों से मिथ को उसके सांस्कृतिक महत्व से विलग नहीं किया जा सकता है। दूसरी बात यह है कि यथार्थ का स्वरूप अत्यन्त जटिल है और मानव के रूप में देवताओं के दोनों प्रकार के कर्म (अच्छे और बुरे) इस तथ्य की ओर भी संकेत करते हैं कि यथार्थ-जीवन में इन दोनों तत्वों का अस्तित्व एक सत्य है अथवा उनकी सापेक्ष स्थिति एक जीवन-सत्य है। मिथक मानव की आन्तरिक गाथा का इतिहास है, वह केवल बाह्य प्रारूपों का रंगस्थल नहीं है।

५ मिथ की लोच 'शक्ति'

जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है कि मिथक एक 'पवित्र' इतिहास है जिसमें अलौकिकता का संस्पर्श भी प्राप्त होता है। मिथक एक प्रकार से उन घटनाओं से सम्बन्धित होते हैं जिनका सम्बन्ध आदि काल से होता है। मिथ के पात्र अपने कार्यकलापों से सृजनात्मक क्रियाओं का उद्घाटित करते हैं और यथार्थ के पक्षों को व्यक्त करते हैं। इस दृष्टि से, मिथक कभी-कभी 'पवित्र' का इस जगत में अवरोहण है और वह सब है जो इस संसार को स्थापित करता है। मिथक अपरोक्ष रूप से, यह उद्घाटित करते हैं कि आदिम मानव और आज के मानव में एक गहरा सम्बन्ध है जो विकास-प्रक्रिया को रेखांकित करते

---

१ निदेशों के महाकाव्य (बुक आफ इपिक्स) अनुवादक गोपीकृष्ण। इस पुस्तक में ग्रीक मिथकों का जो विवेचन (महाकाव्य रूप) प्राप्त होता है, उसमें यह तथ्य प्रकट होता है।

हैं। विकास-प्रक्रिया से मिथकों का यह सम्बन्ध भी स्पष्ट करता है कि मिथ का स्वरूप, विकास के समान ही गत्यात्मक है (Dynamic) है और उनमें अनुकूलित (adaptive) होने की शक्ति है। मिथ की यह अनुकूलन-शक्ति उसे युग और सन्दर्भ के अनुसार रूपान्तरित और विवेचित करती है। इस दृष्टि से मिथक की संरचना में एक प्रकार की 'लोच' होती है जो उसे काल के परिवर्तनशील आयाम में रूपान्तरित करने में समर्थ करती है। इसके साथ यह भी अवश्य कहा जा सकता है कि कुछ मिथकों में यह 'लोच' (अनुकूलन-शक्ति) अधिक होती है और कुछ में अपेक्षाकृत कम। प्रत्येक संस्कृति में और उसके मिथ में यह स्थिति समान रूप से प्राप्त होती है। ईसाई, हिन्दू, मुस्लिम और चीनी आदि मिथकों में यह मानात्मक अन्तर स्पष्ट ही देखा जा सकता है क्योंकि जातीय चेतना में कुछ ऐसे मिथक होते हैं जो उसके अभिन्न अंग होते हैं। कवि, कलाकार और चिंतक इन मिथकों का सन्दर्भानुसार विवेचन करते हैं और 'कुछ' मिथकों को इस सीमा तक अर्थवत्ता प्रदान करते हैं कि उनका जाति की सांस्कृतिक चेतना से एक गहरा और सार्थक सम्बन्ध हो जाता है। मिथ का यह रूपान्तरण अधिकतर कलाकारों, साहित्यकारों और विचारकों के द्वारा ही सम्पन्न होता है क्योंकि जीवित और गत्यात्मक परम्परा से उनका साक्षात्कार एक ऐसे धरातल पर होता है जहाँ वे मिथकों को नया अर्थ प्रदान करते हैं—पूरी परम्परा का मंथन कर उसे प्रासंगिकता प्रदान करते हैं। इस दृष्टि से, प्रत्येक जाति की सांस्कृतिक चेतना में मिथकों का एक अपना सांस्कृतिक महत्व है। इस महत्व में जहाँ एक ओर मिथ या पुरागाथा का सन्दर्भानुसार पुनर्विवेचन होता है, वहीं युग के बदलते सन्दर्भों में और ज्ञान-विज्ञान के नए आयामों के प्रकाश में मिथकों का नया सृजन भी होता है। आधुनिक मिथकों के सृजन और विकास में इस तत्व का समावेश प्राप्त होता है जिसका विवेचन यथास्थान होगा।

६ मिथक का क्षेत्र

मिथक के उपर्युक्त सांस्कृतिक स्वरूप और महत्व के प्रकाश में यह स्पष्ट होता है कि मिथ एक 'सत्य-इतिहास' है क्योंकि इनका सम्बन्ध मानव और विश्व के रहस्यों तथा सत्यों से है। सृष्टि या ब्रह्मांडीय मिथ इसलिए सच हैं कि प्रथम बार इन मिथकों के द्वारा प्रकृति और जगत के अस्तित्व की प्रामाणिकता प्राप्त होती है और ब्रह्मांड के व्यापारों के प्रति एक 'प्राग-तार्किक (Pre Logic) दृष्टि का स्वरूप मुखर होता है। आदिम और प्राचीन मानव

ने इस प्राग-तार्किक शक्ति के द्वारा मानव और विश्व के रहस्यों और तथ्यों के प्रति एक ऐसी 'दृष्टि' प्रदान की जिसकी आधारशिला पर विचारों और प्रत्ययों का भावी इतिहास गतिशील हो सका। प्राग-तार्किक अवस्था में आदिम मानव ने जो प्रतीकों और मिथकों का सृजन किया, उसके अन्तराल में तर्क का जो रूप प्राप्त होता है वह अपेक्षाकृत संवेदनात्मक और उत्तेजनात्मक अधिक है क्योंकि प्राकृतिक घटनाओं और व्यापारों से उनका सीधा साक्षात्कार आश्चर्य, जिज्ञासा और भय की मिली-जुली संवेदनाओं में साथ हुआ जिसका फल यह हुआ कि प्रकृति से उनका 'प्रथम सम्बन्ध' प्रतिक्रियात्मक स्तर पर हुआ। मिथक सृजन में इस प्राग-तार्किक शक्ति का एक महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इसी के द्वारा केवल मिथ ही नहीं, पर भाषा, शब्द, विचार और अवधारणाओं का बहुमुखी विकास सम्भव हो सका।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि मिथ का एक अपना सांस्कृतिक महत्व है जो मिथिक-चेतना को अनेक आयामी बनाता है। जब हम मिथक के सांस्कृतिक स्वरूप पर विचार करते हैं, तब उसका महत्व एकांगी न होकर अनेक आयामी हो जाता है। यही कारण है कि जहाँ एक ओर मिथ व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, वहीं दूसरी ओर, वह समाज को संगठित करता है।[1] मिथ का यह दो पक्षीय स्वरूप किसी भी जाति की सांस्कृतिक चेतना को प्रकट करता है, उसे एक बाह्य और आंतरिक व्यवस्था प्रदान करता है। इस बाह्य और आंतरिक व्यवस्था में उस जाति के विश्वासों और अवधारणाओं का एक ऐसा संघात रूप प्राप्त होता है जिससे मानव के अंतर्मन की आकांक्षाओं और विश्वासों का प्रकटीकरण होता है। दूसरे शब्दों में, मिथिक चेतना हमारे अस्तित्व को अर्थ प्रदान करती है, हमारे क्रिया-व्यापारों को अर्थवत्ता प्रदान करती है।

२ | मिथक की विभिन्न व्याख्याएँ

मिथक की परिभापा और उसके स्वरूप पर विचार करन म एक वात यह स्पष्ट हाती है कि मिथक का एक व्यापक क्षेत्र है जा सास्कृतिक प्रक्रिया का एक अभिन्न अग है। मिथक की व्यापकता और साथ ही, उसके महत्व के कारण आधुनिक युग मे मिथ या पुरागाथा को विभिन्न दृष्टिकाणो से विवेचित एव व्याख्यायित करने का प्रयत्न किया गया है। इस विवचन और व्याख्या के द्वारा मिथक के उस रूप का स्पष्टीकरण होता है जो यथार्थ और कल्पना (प्रभा मण्डल) की द्वद्वात्मकता का प्रकट करता है और यह सिद्ध करता है कि मिथक की सरचना मे इन दाना तत्वो का समावेश न्यूनाधिक रूप म प्राप्त होता है। इससे एक वात यह भी उभर कर सामने आती है कि मिथ मे सब कुछ कल्पनात्मक और वायवी नही है, पर यह भी सच है कि मिथक की अवधारणा के पीछे सत्य और यथार्थ का एक गहरा स्पन्दन प्राप्त हाता है।[1] इस तथ्य के आधार पर मिथ को सास्कृतिक इतिहास का एक अभिन्न अग भी कह सकते है। मिथ की व्याख्याओ मे जो अनेक ज्ञान-क्षेत्रो का सहारा लिया गया है, वह मिथ की व्यापकता और अथवत्ता को अनेक आयाम प्रदान करता है। इन विभिन्न व्याख्याओ म भापाविज्ञान, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, और दशन का आश्रय लिया गया है, और हरेक ज्ञान-क्षेत्र ने अपनी सीमा के अन्दर मिथक की सारगर्भित व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। उपयुक्त ज्ञान क्षेत्रो के मिथ-अध्ययन से एक वात और भी स्पष्ट हाती है कि मिथ की सास्कृतिक व्याख्या म इन सभी ज्ञान-क्षेत्रो का एक अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है क्योकि एक की कमी को दूसरा पूरा करता है और इस प्रकार, मिथ की एक सास्कृतिक अर्थवत्ता प्राप्त हाती है। इस दृष्टि से, मिथ की

---

१ मिथक और यथार्थ, डी० डी० कौसाम्बी, प्रस्तावना। इस पुस्तक म पुरातात्विक खाजा के आधार पर मिथ और इतिहास के सम्बन्ध को एक तार्किक आधार दिया गया है।

व्याख्याओं को निम्न प्रकारों में, अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से, बाटा जा सकता है —

(१) रूपकात्मक व्याख्या

(२) मनोवैज्ञानिक व्याख्या

(३) समाजशास्त्रीय एवं मानवशास्त्रीय व्याख्या

(४) समग्र तात्त्विक व्याख्या

□ □

३ | मिथक की रूपकात्मक व्याख्या

१ मिथक और रूपक तत्व

रूपकात्मक व्याख्या का आरम्भ छठी शताब्दी ई० पू० से माना जा सकता है क्योंकि इस समय के आसपास भारतीय और ग्रीक विचारकों ने मिथक या पुरागाथा के अभिप्राय को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया। रूपक का अर्थ और पुरागाथा से उसका सम्बन्ध इस दृष्टि से भी माना जा सकता है कि रूपक में 'सादृश्य' का आधार होता है जो निहित अर्थ को स्पष्ट करता है। इस रूपक-तत्व में कथा या कथांश का भी स्पर्श रहता है जो मिथक का भी एक अभिन्न अंश है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो रूपक में प्रतीक का सन्निवेश रहता है क्योंकि शब्द प्रतीकों और प्रतीकों के समावेश से ही किसी मिथक की रचना होती है। रूपक के प्रत्येक पात्र और वस्तु का अपना एक विशेष अर्थ या सन्दर्भ होता है जो अपने कार्यव्यापारों से मिथक की घटनात्मक संयोजना करते हैं। इस दृष्टि से यह भी कहना अत्युक्ति नहीं होगा कि 'रूपक' को 'उपमा' का बौद्धिक विकास भी कहा जा सकता है।[१] इस बौद्धिक विकास में एक अन्य तत्व का भी समावेश होता है, वह है संवेदना और अनुभूति का समावेश जो मिथक को सर्जनात्मक बनाते हैं और साथ ही उसकी अर्थवत्ता का व्यापकता प्रदान करते हैं। इस प्रक्रिया में 'रूपक' या बहिरंग तत्व क्रमशः 'महत्-तत्व' के साथ एकीभूत होने लगता है जो उसका अन्यार्थ है और इसी में मिथक की अर्थवत्ता है। रूपक की [चाहे तो कथा-रूपक (Allegory) भी कह सकते हैं] यह सारी संरचना जैसा कि कहा गया, 'प्रतीकवाद' पर आधारित है, और बोशा की यह मान्यता कि मिथ का प्रतीकवाद एक दोषयुक्त प्रतीकवाद है, सर्वथा सही नहीं है।[२] उसकी दलील है कि मिथ के प्रतीकवाद में रूप' (बहिरंग) और 'तत्व' की असमानता रहती है। परन्तु यह मत एकांगी है क्योंकि धरातल पर ऐसा लगता है, पर अन्यार्थ की गतिशीलता के कारण 'रूप' और 'तत्व' का एकीभूत संस्कार हो जाता है और दोनों पक्षों का समानान्तर निर्वाह होता है। मिथक की व्याख्या में रूपकात्मकता का महत्व इसी दृष्टि से

---

१ लैंगवेज एण्ड रियेल्टी, अरबन, पृ० ४७१
२ हिस्ट्री आफ एस्थिटिक्स, बोशा, पृ० ४४

देखा जा सकता है। मिथ की सर्जनात्मकता में 'महत्-तत्व' का, संवेदना का, और साथ ही यथार्थ का एक गहरा और सार्थक समावेश रहता है।

२ भारतीय और ग्रीक परम्परा

छठी और सातवीं शताब्दी ई० पू० में लगभग मिथक या पुरागाथा की व्याख्या का आरम्भ माना गया है क्योंकि इस समय में लगभग भारत तथा ग्रीस में मिथ का रूपात्मक अर्थ के द्वारा विवेचित करने का प्रयत्न किया गया। भारत में सबसे प्रथम यास्क (६०० ई० पू०) ने निरुक्त के आधार पर वैदिक कथाओं और देवी देवताओं की व्याख्या प्रस्तुत की। इस व्याख्या में भाषा-विज्ञान का भी सहारा लिया गया जिसे जर्मन विचारक मैक्समूलर (मैक्समूलर) ने भी अपनी विवेचना का आधार बनाया। यास्क ने वैदिक कथाओं (देवी देवताओं) का प्राकृतिक घटनाओं और आध्यात्मिक अभिप्रायों का रूपक स्वीकार किया। इन्द्र, वरुण, सोम, पूषा, सूर्य आदि को प्राकृतिक व्यापारों एवं शक्तियों के रूप में मानवीकृत करने का जो प्रयत्न प्राप्त होता है, यह प्रवृत्ति ग्रीक, ईसाई और सभी प्राचीन संस्कृतियों में न्यूनाधिक रूप से द्रष्टव्य है। ग्रीक विचारकों (एपीकारमस और हीराक्लिटस) ने मिथकों की व्याख्या भी इसी दृष्टि से की जब उन्होंने होमर द्वारा प्रयुक्त घटनाओं और देवी-देवताओं को प्राकृतिक घटनाओं और शक्तियों का प्रतीक माना और उनमें 'निहित गुप्त-अर्थ' को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया। थियागानस ने यह स्वीकार किया कि होमर के देवी-देवतागण या तो प्राकृतिक तत्व हैं अथवा मानवीय मानसिक शक्ति के प्रतिरूप। यह व्याख्या सामान्य रूप से सभी धार्मिक परम्पराओं में न्यूनाधिक रूप से प्राप्त होती है। दूसरी ओर, ग्रीक विचारकों ने देवताओं को भौतिक और नैतिक अभिप्रायों तक ही परिसीमित कर दिया, पर आगे चलकर प्रथम शताब्दी ई० से हीराक्लिट्स ने मिथकों की रूपात्मक व्याख्या का एक लम्बा क्रम प्रारम्भ कर दिया जिसने पाश्चात्य मिथकों को एक अर्थ प्रदान किया। उदाहरणस्वरूप जब मिथ यह कहता है कि जियाज ने 'हीरा' को आबद्ध कर लिया, तब यह घटना बताती है कि आकाश (ईथर) वायु को समाहित किए हुए है अथवा आकाश वायु का परिसीमन है।[1] इस व्याख्या का सहारा प्राचीन टेस्टामेंट की अनेक कथाओं के विवेचन हेतु लिया गया।

---

१ ब्रिटानिका विश्वकोश, भाग १५, पृ० ११३३

३ सूर्य तथा चन्द्र मिथक

पुराणगाथाओं की इस रूपकात्मक व्याख्या ने सूर्य को अत्यन्त महत्व दिया और उसके उदय और अस्त को, मेघों के द्वारा उसके आच्छादन को और समुद्र में उसके निराहत की घटना को लेकर सौर-गाथाओं का एक व्यापक सृजन सभी धार्मिक परम्पराओं में न्यूनाधिक रूप में प्राप्त होता है। सूर्य के कृत्यों को लेकर इन मिथकों का सृजन जहां सूर्य के महत्व को प्रस्तुत करता है, वहीं वह चन्द्र-मिथकों के सृजन का भी संकेत रखता है। इस दृष्टि से, तीन प्रकार के मिथकों का सृजन प्राप्त होता है जो प्रकृति-व्यापारों और वस्तुओं को केन्द्र में रखकर विकसित हुए। ये मिथक हैं—चन्द्र, सूर्य और ऋतु सम्बन्धी गाथाएं जो प्रकृति के व्यापारों से सम्बन्धित हैं और इनमें आदिम मानव की निरीक्षण शक्ति का परिचय प्राप्त होता है और साथ ही उनकी प्राग्तार्किक शक्ति का संकेत मिलता है। इस प्राग्तार्किक प्रवृत्ति में भय, आश्चर्य और जिज्ञासा की भावनाएँ भी प्राप्त होती हैं। जिसने प्रकृति की घटनाओं को एक दैवी रूप प्रदान किया और इस प्रकार मानवीकरण की प्रक्रिया को घटित किया। ब्रील तथा मोक्षमूलर ने सौर-मिथकों का विवेचन किया और भाषा तथा पुराण के सम्बन्ध को रेखांकित किया। ब्रील ने आडीपस को 'प्रकाश' का रूप माना और उसके अंधत्व को सूर्यास्त का प्रतीक (स्फिंक्स) परन्तु आगे चलकर यह भी माना गया कि मिथकों का आधार केवल सूर्य और चन्द्रमा ही नहीं है, पर उसका आधार पूरी प्रकृति है। वाल्स तथा मोक्षमूलर ने भी इसे स्वीकार किया और इस प्रकार, मिथ की रूपकात्मक व्याख्या को अधिक व्यापक बनाने का प्रयत्न किया।[1]

इस रूपकात्मक व्याख्या को तीसरी शताब्दी ई० पू० में एक अन्य दृष्टिकोण से विवेचित किया गया। (यूहीमरस) ने अपने विचारों को एक दार्शनिक रूप में प्रस्तुत किया और उसने यह दावा किया कि देवताओं के मूल या उद्गम को उसने जान लिया है तथा उनके रहस्य को उद्घाटित कर लिया है। उसके अनुसार ये देवता, प्राचीन सम्राट थे जिन्होंने अपने कार्यकलापों के द्वारा मिथ-सृजन को गति प्रदान की। यह एक अन्य तरीका था जिसने होमर के देवताओं को 'तार्किक विधि' से सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया और उन्हें ऐतिहासिक तथ्य स्वीकार किया। इस प्रकार, इन देवों को सम्राट मानकर यूहीमरस ने

---

१ लोक साहित्य और संस्कृति, डॉ० दिनेश्वर प्रसाद, पृ० ८

मिथक-सृजन की प्रक्रिया को समझाने का प्रयत्न किया। मिथक एक प्रकार से इन प्राचीन राजाओं (या आदिम राजाओं) के कार्य व्यापारों की भ्रमात्मक स्मृति की कल्पनात्मक रूपान्तरण था।[1] यहां पर जो कल्पनात्मक रूपान्तरण की बात कही गयी है, वह मिथिक चेतना का एक अंग अवश्य है, पर सारी मिथिक चेतना अथवा मिथक सृजन का आदिम राजाओं तक ही सीमित करना मिथक के व्यापक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को नजर अन्दाज कर देना है। इस रूपकात्मक व्याख्या का एक प्रभाव यह भी पड़ा कि ग्रीक देवताओं को अयथार्थ माना गया और साथ ही उनके अस्तित्व और महत्व को अपेक्षाकृत कम किया गया। परन्तु इतिहास यह भी सिद्ध करता है कि इन सब प्रयत्नों के बावजूद ये देवता अर्थहीन नहीं हो सके अथवा अंधकार में लुप्त नहीं हो सके। ये देवतागण इसलिये भी विलुप्त या अर्थहीन नहीं हो सके क्योंकि ये जातीय चेतना के अभिन्न प्रेरक अंग के रूप में सुरक्षित रहे। साथ ही, अपने 'लोच शक्ति' के कारण अर्थ के विभिन्न आयामों का, युग सदभानुसार रूपांतरित करते रहे। यही कारण है कि मिथिक चेतना में ये देवतागण हीरो, अथवा महापुरुष (अवतार) किसी न किसी रूप में अपने कार्य व्यापारों के द्वारा कथा या कथांश का सृजन करते रहे।

४ भाषा और मिथक

इस रूपकात्मक व्याख्या का एक अभिन्न अंग भाषिक संरचना भी है क्योंकि भाषा का स्वरूप अपने मूल रूप में रूपकात्मक और प्रतीकात्मक होता है। भाषा और मिथ का विवेचन इसी आधार पर विकास प्राप्त कर सका और उन्नीसवीं शताब्दी में मोक्षमूलर तथा बीसवीं शताब्दी में कैशिरर आदि विचारकों ने भाषा और मिथ के आपसी सम्बन्ध को रेखांकित किया। मूलतः भाषा, शब्दों, प्रतीकों और नामों के द्वारा मिथ का सृजन करती है। मोक्षमूलर ने मिथ-सृजन को भाषा से जोड़कर मिथिक चेतना को एक ऐसा परिप्रेक्ष्य प्रदान किया जिसने उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी में मिथ अध्ययन को एक व्यापक सन्दर्भ दिया। मोक्षमूलर के अनुसार मिथ भाषा की बीमारी या विकृति का फल है। इस सन्दर्भ में एक तथ्य यह भी स्पष्ट लक्षित होता है कि एक पदार्थ या वस्तु के अनेक नाम हो सकते हैं और इसके विपरीत, वे ही 'नाम' अनेक वस्तुओं

---

१ द स्टडी आफ मिथ एण्ड टोटमिज्म, एडमंड लीच, पृ० २६

पर भी घटित हो सकते हैं।[1] इस प्रक्रिया के द्वारा 'नामों' की एक भ्रमात्मक स्थिति सामने आती है, पर यह भ्रम उस समय समाप्त हो जाता है जब विभिन्न नामों और एक नाम से सत्य के स्वरूप को समझने में सहायता प्राप्त होती है। वैदिक देवों तथा ईसाई देवों में यह प्रक्रिया देखी जा सकती है। अनेक देवताओं का एक 'परमदेव' में समाहार और इसके विपरीत एक देवता का अनेक देवताओं में विभाजन प्राचीन धर्मों में प्राप्त एकेश्वरवाद और बहुदेववाद का प्रतिरूप माना जा सकता है। यह सारी प्रवृत्ति मिथिक चेतना की एक प्रक्रिया है जो भाषिक रूपकों के कारण प्रकट होती है। भाषा और मिथिक के तत्वों में चाहे जितना भी अन्तर क्यों न माना जाए, पर एक बात जो दोनों में समान है, वह है मानसिक सकल्पना का आरम्भिक रूप जहाँ से रूपकात्मक या शाब्दिक विचार-प्रक्रिया का सूत्रपात होता है। मोक्षमूलर ने तुलनात्मक रूप में मिथ का जो अध्ययन किया है, उसके मूल में भाषा की यही रूपकात्मक शक्ति है जिसने व्याकरणात्मक लिंगों के द्वारा देवों के मानवीकरण को साकार किया। मोक्षमूलर ने आर्य-देवताओं का अध्ययन मूलतः इसी पद्धति के द्वारा किया और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि आर्य देवकुल अथवा वैदिक 'देवकुल (Pantheon) का निर्माण सूर्य, ऊषा और आकाश के चारों ओर किया गया। यही प्रवृत्ति ग्रीक देव-कुल के बारे में भी प्राप्त होती है जो यह तथ्य प्रकट करती है कि भाषिक सकल्पनाएँ और मिथिक चेतना का एक गहरा सम्बन्ध है—दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। यह तथ्य एक अन्य पक्ष की ओर संकेत करता है कि रूपकात्मक प्रक्रिया मिथ और भाषा के बीच जोड़ने वाली एक बौद्धिक कड़ी है और इस दृष्टि से 'रूपक' (Metaphor) का एक अपना महत्व है।।[2]

मोक्षमूलर के इस विचार को कि मिथक 'भाषा की बीमारी है' का प्रत्याख्यान स्काच विद्वान एण्ड्रयू लैंग ने किया और उसने यह मत प्रस्तुत किया कि मिथ भाषिक विकृति या बीमारी नहीं है, पर वह 'मानवीकरण' का फल है जो प्राकृतिक और ब्रह्माडीय तत्वों का मानवीय रूप है। इसे वह संस्कृति की जडात्मवादी दशा (Animistic) कहता है जिसमें जड पदार्थों और प्रकृति व्यापारों

१ ब्रिटानिका विश्वकोश, भाग १५, पृ० ११३४

२ माइथालाजी, पेयरी मेरान्डा, पृ० २३

को मानवीय चेतना से युक्त दिखलाया जाता है और इस प्रकार उस पर मानवीय क्रियाओ का आरोपण किया जाता है। जडात्मवादी दशा एक प्रकार से धर्म की आरम्भिक स्थिति की ओर सकेत करती है जिसम भय और आश्चर्य के मनोभावो ने प्राकृतिक व्यापारा और शक्तियो को एक 'दिव्य' और 'पवित्र' रूप मे रूपान्तरित किया। इस प्रकार एक पवित्रता की भावना का आरोप इस मानवीकरण प्रक्रिया म प्राप्त होता है। ई० बी० टलर तथा फ्रेजर न भी अनेक उदाहरणा तथा आदिम जातियो की प्रथाआ के विश्लेपण के द्वारा जडात्मवादी प्रवृत्ति को वल प्रदान किया है और मानवीकरण की प्रक्रिया को आदिम प्राग-तार्किक शक्ति से सम्बन्धित किया है।[१] इस नवीन दृष्टिकोण ने मिथ के तुलनात्मक अध्ययन का भी सूत्रपात किया जिसमे मोक्षमूलर तथा ई० सिके (१९०७) के द्वारा स्थापित एक सस्थान ने इस तुलनात्मक अध्ययन को एक वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। इस तुलनात्मक अध्ययन म प्रत्येक शब्द एक सवाक् चित्र था और उसकी एक व्युत्परक व्याख्या ही मान्य थी। पहल शब्द अपने मूल या व्योत्पत्तिक अथ मे प्रयुक्त होते थे जो मूलत ध्वन्यार्थ के द्वारा अपने अर्थ को सकेत करते थे। उदाहरण के तौर पर यह कथन ले कि 'सूय ऊषा का प्यार करता है'—इसम आदिम मानव के द्वारा सूय के उगने का एक ध्वन्यात्मक साक्षात्कार था। यह शब्द का अयाथर्थ प्रयोग तुलनात्मक अध्ययन का आधार बना और इस प्रकार मिथक और भाषा के शब्दो का एक गहरा सम्बन्ध प्रकट हुआ।[२] यह तुलनात्मक पद्धति अत्यन्त लोकप्रिय हुई, पर इसम एक कमी भी थी। समस्त मिथिक चेतना को थोडे से भाषिक परिवतनो और कुछ शब्दो के आधार पर कदाचित् व्याख्यायित करना मिथक के व्यापक सदभ को नजर-अन्दाज करना है। इस कमी का समाजशास्त्रियो और मानवशास्त्रियो ने कम किया जिन्होंने मिथक को सामाजिक सन्दभ प्रदान किया और सास्कृतिक प्रक्रिया म मिथक के महत्व को समक्ष रखा।[३]

---

१ टेलर ने १८७१ म 'प्रिमिटिव कल्चर' तथा फ्रेजर न 'गोल्डन बो' का प्रकाशन किया जिसम इस प्रवृत्ति का विश्लेपण प्राप्त होता है, पर य पुस्तकें नृतत्वशास्त्र से अधिक सम्बन्धित ह। यहाँ पर इनका सकेत प्रसगवश है क्योकि भाषा से भी इसका गहरा सम्बन्ध है।

२ लोक साहित्य और सस्कृति, डा० दिनेश्वर प्रसाद, पृ० १३

३ इसका विवेचन यथास्थान आगे किया जायगा।

पर भी घटित हो सकते हैं।[१] इस प्रक्रिया के द्वारा 'नामों' की एक भ्रमात्मक स्थिति सामने आती है, पर यह भ्रम उस समय समाप्त हो जाता है जब विभिन्न नामों और एक नाम से सत्य के स्वरूप को समझने में सहायता प्राप्त होती है। वैदिक देवों तथा ईसाई देवों में यह प्रक्रिया देखी जा सकती है। अनेक देवताओं का एक 'परमदेव' में समाहार और इसके विपरीत एक देवता का अनेक देवताओं में विभाजन प्राचीन धर्मों में प्राप्त एकेश्वरवाद और बहुदेववाद का प्रतिरूप माना जा सकता है। यह सारी प्रवृत्ति मिथिक चेतना की एक प्रक्रिया है जो भाषिक रूपकों के कारण प्रकट होती है। भाषा और मिथिक के तत्वों में चाहे जितना भी अंतर क्यों न माना जाए, पर एक बात जो दोनों में समान है, वह है मानसिक संकल्पना का आरम्भिक रूप जहाँ से रूपकात्मक या शाब्दिक विचार-प्रक्रिया का सूत्रपात होता है। मोक्षमूलर ने तुलनात्मक रूप से मिथ का जो अध्ययन किया है, उसके मूल में भाषा की यही रूपकात्मक शक्ति है जिसने व्याकरणात्मक लिंगों के द्वारा देवों के मानवीकरण को साकार किया। मोक्षमूलर ने आर्य-देवताओं का अध्ययन मूलतः इसी पद्धति के द्वारा किया और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि आर्य देवकुल अथवा वैदिक 'देवकुल' (Pantheon) का निर्माण सूर्य, ऊषा और आकाश के चारों ओर किया गया। यही प्रवृत्ति ग्रीक देव-कुल के बारे में भी प्राप्त होती है जो यह तथ्य प्रकट करती है कि भाषिक संकल्पनाएँ और मिथिक चेतना का एक गहरा सम्बन्ध है—दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। यह तथ्य एक अन्य पक्ष की ओर संकेत करता है कि रूपकात्मक प्रक्रिया मिथ और भाषा के बीच जोड़ने वाली एक बौद्धिक कड़ी है और इस दृष्टि से 'रूपक' (Metaphor) का एक अपना महत्व है।।[२]

मोक्षमूलर के इस विचार को कि मिथक 'भाषा की बीमारी है' का प्रत्याख्यान स्कॉच विद्वान एंड्रयू लैंग ने किया और उसने यह मत प्रस्तुत किया कि मिथ भाषिक विकृति या बीमारी नहीं है, पर वह 'मानवीकरण' का फल है जो प्राकृतिक और ब्रह्माडीय तत्वों का मानवीय रूप है। इसे वह संस्कृति की जडात्मवादी दशा (Animistic) कहता है जिसमें जड पदार्थों और प्रकृति व्यापारों

---

१ ब्रिटानिका विश्वकोश, भाग १५, पृ० ११३४

२ माइथालॉजी, पेयरी मरान्डा, पृ० २३

को मानवीय चेतना से युक्त दिखलाया जाता है और इस प्रकार उस पर मानवीय क्रियाओं का आरोपण किया जाता है। जडात्मवादी दशा एक प्रकार से धर्म की आरम्भिक स्थिति की ओर सकेत करती है जिसमे भय और आश्चय के मनोभावो ने प्राकृतिक व्यापारों और शक्तियों को एक 'दिव्य' और 'पवित्र' रूप मे रूपान्तरित किया। इस प्रकार एक पवित्रता की भावना का आरोप इस मानवीकरण प्रक्रिया में प्राप्त होता है। ई० बी० टेलर तथा फ्रेजर ने भी अनक उदाहरणो तथा आदिम जातियो की प्रथाओं के विश्लेषण के द्वारा जडात्मवादी प्रवृत्ति को बल प्रदान किया है और मानवीकरण की प्रक्रिया को आदिम प्राग-तार्किक शक्ति से सम्बन्धित किया है।[1] इस नवीन दृष्टिकोण ने मिथ के तुलनात्मक अध्ययन का भी सूत्रपात किया जिसम मोक्षमूलर तथा ई० सिके (१८०७) के द्वारा स्थापित एक सस्थान ने इस तुलनात्मक अध्ययन का एक वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। इस तुलनात्मक अध्ययन म प्रत्येक शब्द एक सवाक् चित्र था और उसकी एक व्युत्परक व्याख्या ही मान्य थी। पहले शब्द अपन मूल या व्यौत्पत्तिक अर्थ म प्रयुक्त होते थे जो मूलत ध्वन्यार्थ के द्वारा अपने अर्थ को सकेत करते थे। उदाहरण के तौर पर यह कथन ले कि 'सूय ऊषा का प्यार करता है'—इसमे आदिम मानव के द्वारा सूय के उगने का एक ध्वन्यात्मक साक्षात्कार था। यह शब्द का अन्यार्थक प्रयोग तुलनात्मक अध्ययन का आधार बना और इस प्रकार मिथक और भाषा के शब्दो का एक गहरा सम्बन्ध प्रकट हुआ।[2] यह तुलनात्मक पद्धति अत्यन्त लोकप्रिय हुई, पर इसम एक कमी भी थी। समस्त मिथिक चेतना को थोडे से भाषिक परिवतनो और कुछ शब्दो के आधार पर कदाचित् व्याख्यायित करना मिथक के व्यापक सदभ को नजर-अन्दाज करना है। इस कमी को समाजशास्त्रियो और मानवशास्त्रियो न कम किया जिन्होंने मिथक को सामाजिक सन्दभ प्रदान किया और सास्कृतिक प्रक्रिया म मिथक के महत्व को समक्ष रखा।[3]

---

१ टेलर ने १८७१ मे 'प्रिमिटिव कल्चर' तथा फ्रेजर न 'गोल्डन बो' का प्रकाशन किया जिसम इस प्रवृत्ति का विश्लेषण प्राप्त होता है, पर य पुस्तकें पुरातत्वशास्त्र से अधिक सम्बन्धित हैं। यहाँ पर इनका सकेत प्रसगवश है क्योंकि भाषा स भी इसका गहरा सम्बन्ध है।

२ लोक साहित्य और सस्कृति, डॉ० दिनेश्वर प्रसाद, पृ० १३

३ इसका विवेचन यथास्थान आगे किया जायगा।

अस्तित्ववादी दार्शनिक कैशिरर ने मिथ और भाषा के सम्बन्ध को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। कैशिरर के विचारों में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि उसने यह स्वीकार किया कि मिथ और भाषा के तत्वों (contents) में चाहे कितना ही अन्तर क्यों न हो, पर एक बात जो दोनों में समान है, वह है एक प्रकार की मानसिक संकल्पना जो दोनों में क्रियाशील है। यह मानसिक संकल्पना एक ऐसी क्रिया है जो मिथ भाषा के अन्योन्य सम्बन्ध को रेखांकित करती है और यह स्पष्ट करती है कि मिथ और भाषा के बीच की कड़ी 'रूपक' है क्योंकि रूपक-तत्व, शब्द की एक ऐसी शक्ति या गुण है जो अपने अर्थ के द्वारा भाषा और मिथ के परस्पर सम्बन्ध को रेखांकित करती है। शब्द का यह गुण एक ऐसी धरोहर है जो भाषा, मिथ से प्राप्त करती है और मिथ की संरचना में शब्द की प्रतीति उसके मौलिक रूप में और आधा उसके रूपान्तरित रूप में होती है। यह स्थिति यातु और टैबू (तथा टोटम) में देखी जा सकती है जहाँ शब्द का स्वरूप और उसके गुण की प्रतीति उसके मौलिक और रूपान्तरित रूप में प्राप्त होती है। यहाँ पर जगत के प्रति एक यातुक दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है क्योंकि यातुक क्रिया में शब्दों के द्वारा प्रकृति और वस्तुओं पर अधिकार किया जाता है।[1]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि मिथ और भाषा दो भिन्न प्रकार की क्रियाएँ हैं, पर उनका उद्गम एक ही प्रकार के प्रतीकात्मक और रूपकात्मक क्रियाओं से हुआ है अथवा उनका सम्बन्ध एक ही प्रकार की मानसिक क्रिया से है। इस मानसिक उद्वेलन में विषय और विषयी का आपसी सम्बन्ध प्राप्त होता है।

यहाँ पर आकर कैशिरर ने प्रतीकवादी तर्कशास्त्र का आधार लेकर ज्ञान-मीमांसा को प्रस्तुत किया। प्रतीकवादी तर्कशास्त्र की यह मान्यता है कि हमारा मानस दो प्रकार की समानान्तर स्वतंत्र प्रक्रियाओं में कार्य करता है—एक सैद्धान्तिक या वैज्ञानिक (तार्किक) और दूसरे मिथिक चेतना। प्रथम क्रिया का स्वरूप विश्लेषणात्मक होता है, तो दूसरी ओर मिथिक संकल्पनाओं का स्वरूप संश्लेषणात्मक होता है। मिथिक संकल्पना में मानसिक वृत्त विस्तृत न होकर सघनता की ओर अग्रसर होता है अर्थात् मिथक संकल्पना में 'सघनन' की प्रवृत्ति प्राप्त होता है। दूसरी ओर, तार्किक संकल्पना में तथ्यों का विवेचन

१ इस पक्ष का पूरा विवेचन यथास्थान आगे किया जाएगा।

और विश्लेषण प्राप्त होता है।[1] भाषा में चिंतन की ये दोनों प्रक्रियाएँ प्राप्त होती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि अपने मूल रूप में भाषिक संकल्पना मिथिक संकल्पना है। इस मिथिक संकल्पना में समस्त प्रकाश एक केन्द्रीय बिंदु में सघनीकृत हो जाता है और यह बिन्दु 'अर्थ' का प्रतिरूप है जहाँ से मिथ का अर्थ प्रकट होता है। इस केन्द्रीय 'अर्थ बिन्दु' के बाहर जो कुछ भी रहता है, वह एक प्रकार से अदृश्य रहता है। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि केन्द्रीय अर्थ के बिन्दु से जो बाहर का इतिवृत्त है, वह अदृश्य रहकर भी (अर्थ की दृष्टि से) उसी केन्द्रीय बिन्दु का इतिवृत्तात्मक विस्तार है जो मेरे विचार से मिथिक चेतना का एक अभिन्न अंग है। कैसिरर ने इस 'अदृश्य' शब्द के द्वारा एक भ्रमात्मक स्थिति को ही जन्म दिया है क्योंकि इसके स्थान पर यदि 'इतिवृत्त' का प्रयोग किया जाता तो मिथिक चेतना के सही एवं सार्थक स्वरूप का निदर्शन हो सकता था।

भाषा और मिथ के बारे में एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व की ओर कैसिरर ने अपना मंतव्य प्रकट किया है। उनका यह कहना है कि मिथ और भाषा में जो अवधारणाएँ (या संकल्पनाएँ) समाहित रहती हैं, उन्हें विस्तार के रूप में ग्रहण न कर 'तीव्रता' के रूप में स्वीकार करना समीचीन है। दूसरे शब्दों में इन अवधारणाओं को मात्रात्मक (विस्तार) रूप में न स्वीकार कर गुणात्मक (तीव्रता) रूप में ग्रहण करना चाहिये।[2] यह बात सही है कि मिथिक और भाषिक अवधारणाओं का अर्थ केन्द्रीय और गुणात्मक होता है क्योंकि मिथक का एक अपना गुणात्मक और तीव्र अर्थ-सघनन होता है, पर जैसा कि कहा गया कि मिथिक में यह अर्थ सघनन केन्द्र में रहता है और इस केन्द्र के चारों ओर इतिवृत्त का विस्तार या इसे मात्रात्मक रूप भी कहा जा सकता है, भी रहता है जो केन्द्रीय अर्थ को तीव्रता देता है। अतः मेरे विचार से विस्तार या मात्रात्मक अंग का मिथिक चेतन में एक सापेक्ष महत्व है जिसे एक प्रकार से, साधन रूप में लिया जा सकता है क्योंकि इस विस्तार का लक्ष्य केन्द्रीय अर्थ को अधिक तीव्र और सघन करता है। इस तत्व के द्वारा ही मिथकों का काल की सापेक्षता में और युग के सन्दर्भ में अर्थ का रूपान्तरण या विवेचन प्राप्त होता है जो मिथ की 'लोच शक्ति' का परिचायक है।

□ □

१ लैंगवेज एण्ड मिथ, कैसिरर, पृ० २७-२८

२ माइथालाजी, स० पियरी मरांडा, पृ० २८

४ | मिथक की मनोवैज्ञानिक व्याख्या

१ मानसिक क्रिया और मिथक का सम्बन्ध

आधुनिक वैचारिक इतिहास मे मनोवैज्ञानिक प्रत्यया और विचारा का महत्वपूण स्थान है और इसने मानवीय क्रियाओ और शक्तियो का एक नया विवेचन प्रस्तुत किया है। मानसिक क्रियाओ का एक तार्किक विश्लेषण और मानव विकास से उसके सम्बन्ध का रेखाकित कर मनोवैज्ञानिक अध्ययन ने मानव-मन की अतल गहराइयो का साक्षात्कार किया है। इस अध्ययन तथा खोज ने मानवीय-क्रियाओ का समझने का एक नया आयाम उद्घाटित किया और साथ ही, मानस और परिवेश के आपसी सम्बन्ध और प्रतिक्रियाओ को इस प्रकार प्रस्तुत किया कि उनके द्वारा मानसिक और परा-मानसिक शक्तियो का एक 'आश्चयजनक' और रहस्यपरक (रहस्यवाद नही) लोक का क्रमिक उद्घाटन हुआ। यह उद्घाटन मानव-मन के क्रमिक विकास म परिलक्षित होता है जिसके द्वारा आदि मानव स लेकर आज तक के मानव के विकास को समझा जा सकता है जा प्रत्यक्ष रूप से मानव के वैचारिक इतिहास को क्रमिक रूप से रेखाकित करता है। आदिम मानव (प्राचीन मानव) ने मन की इस वैचारिक शक्ति का प्रदशन (जिसे कैसिरर तथा लीवी ब्रूहल ने प्राग्तार्किक विचारा की सज्ञा दी है) अनेक क्रियाओ तथा सृजनाओ के द्वारा प्रस्तुत किया। मिथ, प्रतीक, यातु और धम के अनेक प्रारम्भिक विचारा की पृष्ठभूमि म मन की इसी सृजनात्मक क्रिया का परिचय प्राप्त हाता है। इस मानसिक क्रिया का महत्व इसी सृजनात्मक-शक्ति म निहित है जिसन मानव के वैचारिक-इतिहास को अनेक 'रूपा' मे विकसित किया। ये 'रूप' ही व प्रारम्भिक विचार और अवधारणाएँ है जिसने अनेक ज्ञान-क्षेत्रा (जैसे धम, मिथ, गणित, इतिहास आदि) का जन्म दिया और साथ ही मानसिक-प्रक्रियाओ की अनेक आयामी 'गतिशीलता' को रेखाकित किया। मिथ और धर्म भी इस गतिशीलता के एक आयाम की ओर सकेत करत हैं जिसके स्वरूप और सृजन प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिक अथवा मनोविश्लेषणवादी दृष्टि से विवेचित समझा जा सकता है। मिथिक चेतना का विवेचन और उसके विकास का एक मानसिक क्रिया के

रूप मे देखना जिसमे बाह्य जगत के प्रति एक सवेदनात्मक 'उत्तेजना' का रूप भी प्राप्त होता है, सत्य म मानव-मन की उस 'शक्ति' की ओर सकेत करता है जिसे मैंने 'सृजनात्मक' या 'प्राग्तार्किक' शक्ति की सज्ञा दी है।

२ मनस का विभाजन

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि मिथ, धर्म तथा अन्य मानवीय-क्रियाओ का सम्बन्ध मानसिक-क्रिया से है जिसका सम्बन्ध 'चेतना' से है। मनस (साइकी) के दो अग है—एक 'चेतन' और दूसरे 'अचेतन' जिसके बारे मे फ्रायड और युग ने अपने तरीके से विचार किया है। फ्रायड ने 'मनस' (व्यक्तित्व) के तत्वो का विभाजन 'ईड, इगो और सुपरइगो' म किया है जबकि युग ने मनस का विभाजन चेतन, व्यक्तिगत अचेतन और सामूहिक अचेतन के रूप मे किया है। मनस का इन तीन उपभागो म विभाजन युग की विचार-धारा का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है जिसने मानसिक चिकित्सा के क्षेत्र म और मिथ-सृजन के क्षेत्र म समान रूप से योगदान दिया है।[1]

व्यक्तिगत-अचेतन के बारे म यह मान्यता है कि वह अचेतन की ऊपरी सतह है। सामान्य रूप से यह माना जाता है कि ऐसी बहुत सी वस्तुएँ होती हैं जो अचेतन म एकत्र होती जाती हैं जैसे ऐसी स्मृतिया जो विस्मृत हो गयी हैं, ऐसी प्रवृत्तिया तथा इच्छाएँ जो दमित हो गई हैं तथा ऐसी वासनाएँ जो समाज मे (किसी कारणवश) पूरी नही हो सकी हैं। ये सभी तत्व मिलकर अचेतन की 'जटिलताओ' का निर्माण करते है। ये दमित तत्व कभी भी चेतन नही होते हैं, वरन् इनका प्रयत्न यह होता है कि वे चेतन स्तर को सदैव आदोलित करने की ओर गतिशील रहते है। यह तथ्य कि बहुत सी वस्तुएँ जो अचेतन की 'गहराई' म आरम्भ होती है, वे क्रमश चेतना के ऊर्ध्व स्तर की ओर बढती हैं जो यह स्पष्ट करती हैं कि चेतना मे नीचे न जाने कितने समय से एक निरन्तर विकास होता जा रहा है और वासनाएँ तथा इच्छाएँ अचेतन म दीर्घ काल से एकत्र होती रहती हैं और तब कही इसके बाद वे अपना 'प्रभाव' चेतन-स्तर पर दिखाने म समर्थ होती हैं। इस प्रकार, अचेतन का यह ऊपरी स्तर किसी व्यक्ति के उस रूप की ओर सकेत करता है, जो वह एक (चेतन) रूप म है। दूसरे शब्दो म अचेतन की यह ऊपरी 'सतह'

---

१ माडर्न साइकालॉजी, डेविड फाक्स, पृ० ७७

किसी मानव के व्यक्तिगत गुणों से सयुक्त होती है और इसी से युग इसे 'व्यक्तिगत अचेतन' की सज्ञा देता है जो प्रत्येक व्यक्ति मे भिन्न-भिन्न होती है।[1]

३ सामूहिक अचेतन और मिथक सृजन

हम यह देख आए हैं कि मनस-शक्ति, अचेतन के द्वारा ऊर्ध्वगामी (या आरोहणशील) होती है जब तक कि वह अतत चेतना मे प्रविष्ट नही हो जाती है। अब प्रश्न यह उठता है कि ये मनस् तत्व कहाँ से आते हैं, तो यह माना जा सकता है कि वे अचेतन के किसी गहरे स्तर से आते हैं। अचेतन के इस गहरे स्तर को 'सामूहिक अचेतन' की सज्ञा दी गयी है। हमारे जीवन मे ऐसी अनेक घटनाएँ घटित होती हैं जो सामूहिक अचेतन की अभिव्यक्तियाँ है। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सामूहिक अचेतन के तत्व उसी प्रकार प्रकट होते हैं जिस प्रकार अचेतन के अन्य तत्व अर्थात् विचार, अभिवृत्त और व्यवहार। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत और सामूहिक अचेतन के प्रकटीकरण मे एक अतर भी है और वह यह कि सामूहिक अचेतन की अभिव्यक्तिया अन्य अचेतन तत्वो के विपरीत अधिक विचित्र और विषम होती है, उनकी यह विषमता इसलिए भी अधिक होती है कि उन्हे मनस् चेतन म कही अधिक प्रतिरोध सहन करना पडता है और इसी कारण ये तत्व स्वप्न, दिवा-स्वप्न और अनेक प्रकार की मानसिक विकृतिया और हलचलो म रूपान्तरित होते रहते हैं।

सामूहिक अचेतन का प्रकटीकरण एक प्रकार से 'जीवन से भी विस्तृत' है और स्वप्न तथा फैन्टेसी, जो सम्भाव्य की अपेक्षा असम्भावित से अधिक जुडी रहती हैं, सामान्यत मानव जीवन म एक आम घटना है। दूसरी ओर ऐसे दिवा-स्वप्न जो सर्वशक्तिमान (विश्व म) की भावना से अनुप्रेरित रहते हैं और जीवन तथा मृत्यु की शक्ति से अन्य व्यक्तियो की सापेक्षता म गतिशील रहते हैं—इस उदाहरण नैसर्गिक भ्रम, उन्माद तथा विक्षिप्तता की दशा के अधिक निकट होते हैं। रावण का अपने को सर्वशक्तिमान मानना, हिरण्यकश्यप का अपने को इस कदर महान शक्तिशाली मानना कि उससे आगे 'परमदेव' भी नतशिर है और ओल्ड टेस्टामेन्ट मे जोसफ का यह स्वप्न जहा तक यह

---

1 साइकोलाजी आफ द अनकाशेस, युग, पृ० १५

कल्पना करता है कि उसके सामने, सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र नमन कर रहे हैं—ऐसे अनेक उदाहरण अचेतन की क्रिया से सम्बन्धित हैं जो यथार्थ जीवन से कहीं अधिक विस्तृत है।

'जीवन से भी बड़े' इन गुणों की अपेक्षा सामूहिक अचेतन की अभिव्यक्तियां इतनी व्यापक हैं कि वे बार-बार मानवीय इतिहास में घटित होती रहती हैं। यह युग के ही प्रयत्नों का फल है कि अनेक मनोचिकित्सक अपने परामर्श कक्षों में उन तथ्यों और रहस्यों को प्राप्त कर सके जिनकी समानान्तर समानता प्राचीन ग्रन्थों और प्राचीन धार्मिक पद्धतियों में प्राप्त होती है। इन कक्षों में अनेक रोगियों के स्वप्न और फैन्टेसी जो जीवन से भी बड़े गुणों के दस्तावेज हैं और जिनके जीवन से इनका गहरा महत्व है—इनकी समानता ऐसे बिम्बों और विचारों से है जो हम मिथ और धर्म में भी प्राप्त होते हैं। सामूहिक अचेतन की अभिव्यक्तियाँ अधिकतर स्वप्न और फैन्टेन्सी में ही होती हैं, इसका कारण यह है कि यथार्थ जीवन की चेतन-प्रक्रिया से ये तत्व बहुत कम नियन्त्रित होते हैं। सामूहिक अचेतन के प्रकटीकरण में एक अन्य तत्व की ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है जिसका सम्बन्ध मिथ और धर्म से माना गया है और यह तत्व है—इन अभिव्यक्तियों की अर्थवत्ता 'व्यक्तिगत' न होकर सामान्य या 'सामूहिक' महत्व की होती है। दूसरे शब्दों में, इनका सम्बन्ध प्रत्येक व्यक्ति में है जैसे 'माता' का अस्तित्व, जन्म लेना, सूर्य का ताप और उसकी अपार शक्ति, मृत्यु आदि की घटनाएँ जो अनेक बिम्बों और भावों के द्वारा संसार भर में प्राप्त होती है, इसे ही युग ने सामूहिक अचेतन की अभिव्यक्तियाँ कहा है।[१] सामूहिक अचेतन की अनेक प्रकार की अभिव्यक्तियां ऐसी भी हैं जो मानव-संस्कृति में इतनी महत्व की हैं कि उन्हें सांस्कृतिक प्रक्रिया से अलग नहीं किया जा सकता है। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण नायक या 'हीरो' की भावना है जो अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अनेक बाधाओं पर विजय प्राप्त करता है, सृष्टि की भावना, निरपेक्ष पाप और पुण्य की भावना, तथा सभी व्यक्तियों की 'परम माता' की भावना—ये सभी तत्व प्रतीक और मिथ के सृजन में अपना योगदान देते रहे हैं। ये सभी भाव या विचार तर्कना-शक्ति से अधिक अनुशासित नहीं रहते हैं और इसी से ये स्वप्न

---

१ माडर्न साइकालाजी, डेविड काक्स, पृ० ८४

मे रूपान्तरित होते हैं और चेतन 'फैन्टेसी' म वाष्पीकृत हो जाते हैं।[1] यह सारी प्रक्रिया मानव मन की वह अद्भुत और आधारभूत प्रक्रिया है जिसने धर्म और मिथ को जन्म दिया। मानव की अनेक क्रियाएँ अनुभव व इसी प्रतीकात्मक रूपान्तरण पर विकसित हुई हैं।

सामूहिक अचेतन को मनस् का गहरा स्तर माना गया है और युग ने इसे 'विषयगत या 'वस्तुपरक' (objective) माना है। इसस उसका तात्पय यह है कि यह स्तर व्यक्ति के विषयीगत (subjective) जीवन पर आश्रित नही है। और साथ ही, व्यक्ति के चेतन मन के द्वारा यह 'स्तर' नियन्त्रित नहीं रहता है—वरन् यह हमारे जीवन को अपने तरीके स प्रभावित करता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार शरीर के आतरिक अग (गुर्दे और जिगर) बिना चेतन के निर्देश और ज्ञान के अपना काय सम्पन्न करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि सामूहिक अचेतन की क्रिया क फलस्वरूप जो बिम्ब और भाव उत्पन होते हैं, उसके लिए हम उत्तरदायी नही हैं। एक अन्य कारण स भी हम सामूहिक अचेतन को 'वस्तुपरक' कह सकते है कि यह प्रत्यक व्यक्ति के लिए समान है और इस आधार पर इसकी तुलना बाह्य जगत स भी की जा सकती है जिसम हमारा जीवन क्रियाशील रहता है। इस प्रकार सामूहिक अचेतन एक मानसिक (या आत्मिक) पृष्ठभूमि अथवा वातावरण प्रस्तुत करता है जिसके अन्दर हम अपने चेतन जीवन को व्यतीत करते हैं और जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान है, चाहे उन व्यक्तियो म व्यक्तिगत विभिन्नताएँ क्यो न हो ?

सामूहिक अचेतन और बाह्य भौतिक जगत के सम्बन्ध को लेकर आगे भी विचार किया जा सकता है। सामूहिक अचेतन की अभिव्यक्तिया जहाँ एक ओर विभिन्न व्यक्तियो के जीवन म घटित होती हैं, वहीं वे समूह के जीवन म भी प्राप्त होती हैं। इसका एक उदाहरण दो महायुद्धो के बीच हिटलर का उदय है। यह कहना कि हिटलर ने जर्मन जाति पर अपने अतिवादी विचारो को आरोपित किया, यह पूर्ण सत्य नही है, पर यह भी सत्य है कि हिटलर ने जर्मन जाति की आतरिक इच्छाओ और कामनाओ को एक ठोस अभिव्यक्ति प्रदान की जो अभिव्यक्ति के लिये एक सामूहिक रूप म प्रयत्नशील थी। यहीं

---

१ -फिलासफी इन ए न्यू की, सूसेन के० लेंगर, पृ० ३३

कार्य राम ने जन-वाहिनी के सगठन के द्वारा सम्पन्न किया[1] और गाँधी ने जन-मानस की इच्छाओं को एक सगठित आधार प्रदान किया है। इससे यह स्पष्ट है कि एक ही प्रकार के अचेतन तत्व एक ही समूह या जाति के व्यक्तियों को प्रभावित कर सकते हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि मनस् की उप-सरचना में व्यक्ति की सत्ता समाविष्ट रहती है जिसकी अभिव्यक्ति उसके द्वारा होती है। अत युग ने सामूहिक अचेतन को पर्वत की शृङ्खला कहा है जिसकी चोटियाँ व्यक्ति का चेतन मन है।[2] एक विश्वजनीन सामूहिक अचेतन का भाव इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि इसके द्वारा ऐसी प्रक्रियाओं और घटनाओं को समझा जा सकता है जिनका सम्बन्ध एक से अधिक व्यक्तियों से होता है। मिथ और प्रतीक (धर्म) का सम्बन्ध इसी प्रक्रिया से है जो सामूहिक अचेतन और चेतन व्यक्ति के आपसी सम्बन्ध को रेखाकित करती है।

४ महामाता का मिथक

यहाँ पर यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि सामूहिक अचेतन सदैव ही अचेतन रहा है और रहना चाहिये। मानवीय-विकास के दौरान जो वस्तुएँ कभी सामूहिक अचेतन में थी वे क्रमश चेतना की अग हो गयी, पर यह प्रक्रिया अत्यन्त जटिल और दीर्घकालीन है और यह सम्भव नहीं है कि सामूहिक अचेतन के तत्व कम समय में चेतना के स्तर तक आ सके, इसके लिए एक लबे समय की आवश्यकता है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो सामूहिक अचेतन, अचेतन की वह पृष्ठभूमि है जो चेतना को गहनता और शक्ति प्रदान करती है। यह गहराई और शक्ति मिथ-सृजन की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जो काल के दीर्घ आयाम के अन्दर ही घटित होती है। उदाहरण स्वरूप 'महान माता' के मिथ (धारणा) को लिया जा सकता है। 'महान माता' के भाव के चारो ओर जो तत्व एकत्र हुए है, उनका सम्बन्ध मानव अनुभव से है, विशेषकर 'मानव मातृत्व' से है और दूसरी ओर पृथ्वी पर आश्रित हमारे जीवन की अनेक दशाएँ जिसने 'पृथ्वी माता' और 'प्रकृति माता' को अभिव्यक्ति प्रदान की। मातृदेवियों की कल्पना के पीछे भी इसी प्रक्रिया का स्वरूप प्राप्त होता है और धीरे-धीरे महान माता का मिथ एक पवित्र और दिव्य रूप में विकसित

---

१ इस पक्ष का एक सुन्दर विवेचन डॉ० नगेन्द्र कोहली के रामकथा पर लिखे गये उपन्यास 'सघर्ष की ओर' [illegible] में प्राप्त होता है।

२ माडर्न साइकोलॉजी, पृ० ८७

हुआ। धरती माता का एक अन्य रूप भी है जो प्रत्येक वस्तु को अपने अन्दर समेट लेती है जो उसके भयानक रूप को समक्ष रखती है। ऐसी भयानक देविया की कल्पना अनेक संस्कृतिया मे प्राप्त होती है जैसे काली, दुर्गा आदि। 'माता' के इस रूप का भयानक निगलन वाला रूप भी कहा गया है जो अनेक भयावह प्रस्थापनाओ की सृष्टि करता है जो माता के अन्दर पूर्ण रूप से आश्रित होने की भावना को व्यक्त करता है। सामूहिक अचेतन म अनेक ऐसे भावो के मध्य यह भाव भी उसी समय तक रहता है जब अन्य भावो से उसका सतुलन और व्यवधान रहता है, परन्तु यदि यह भाव (माता) चेतन स्तर तक एक वास्तविक अभिवृत्ति के रूप म आ गया तो यह निश्चित है कि मानव जीवन अनेक अनैच्छिक विरूपणो तथा विकृतियो से ग्रस्त हो जाएगा। यथार्थत ऐसी अवस्था मे एक व्यक्ति कुछ ऐसी वस्तु म अपने को 'निगला' हुआ पाएगा जो माता-बिंब का प्रकटीकरण हो। यह कुछ वस्तु स्वय उसकी माता हो सकती है, अथवा यह 'निगलने की प्रक्रिया' पूर्ण समर्पण की अवस्था तक जा सकती है जहा व्यक्ति सारी निर्णय की शक्तिया और दशाओ को समाप्त कर लेता है, अथवा वह आज की विसगतियो (सभ्यता की) से पलायन कर एकाकी जीवन बिताने लगता है अथवा वह मानवीय माता का स्थानापन्न कदाचित् 'पत्नी' म कर लेता है और उस पर पूर्ण तथा निरपेक्ष रूप स आश्रित हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामूहिक अचेतन का प्रभाव व्यक्ति और समूह पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनो रूपो म पडता है। युग का तो यहाँ तक मत है कि सामूहिक अचेतन के तत्वो के प्रति जब व्यक्ति सचेत हो जाता है, तब उनसे वह अनेक लाभ और शक्तियाँ प्राप्त करता है। यह भी सम्भव है कि जब सामूहिक अचेतन के तत्व चेतन स्तर तक गतिशील होते हैं, तब महान कलात्मक कृतियो का, वैज्ञानिक अनुसधानो का तथा अन्य मानवीयसजनाओ का उदय होता है। चेतन और सामूहिक अचेतन के मध्य यह गतिशील 'सवाद' अनेक महान सजनाओ को जन्म देता है और यह तभी सम्भव है जब 'अह' इस स्थिति पर अधिकार कर सके, और यदि अह ऐसा नही कर सका, तो वह सामूहिक अचेतन के तत्वो से स्वय अधिकृत हो जाएगा अथवा यह भी हो सकता है कि वह नष्ट हो जाए।[1] 'अह' का इस प्रकार अधिकृत या नष्ट हो जाना, व्यक्तित्व को खण्डित कर देता है और वह अनेक प्रकार के मानसिक रोगो का शिकार हो जाता है।

---

१ साइकालाजी आफ दि अनकॉशस, युग, पृ० ४८

उपर्युक्त विवेचन से एक बात यह स्पष्ट होती है कि फ्रायड ने मिथ और प्रतीक को काम केन्द्रित ही माना पर व्यापक रूप में और उसे इच्छाजनित विचार-प्रक्रिया से जोड़कर आदिम मानवता से सम्बन्धित किया। इसके विपरीत युग ने मिथ और प्रतीक को एक व्यापक आधार दिया और उसे केवल यौन-केन्द्रित न मानकर मनस् शक्ति के रूप में स्वीकार किया। युग के लिए मिथ एक मानसिक सृजन है जिसका महत्व विश्लेषणात्मक है। ये मिथ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक को प्राप्त होते रहते हैं और यह प्रक्रिया एक प्रकार से मानसिक सरचना के द्वारा ही घटित होती है। फ्रायड ने 'लीबिडो' को केवल काम भावना से सम्बन्धित कर, मिथ और प्रतीक को यौन केन्द्रित माना था, पर जैसा कि कहा गया कि युग ने लीबिडो' को जीवन ऊर्जा से सम्बन्धित कर मिथ और प्रतीक को व्यापक मानवीय सदर्भ प्रदान किया। मिथ और प्रतीक इस जीवन-ऊर्जा को जैव कार्यों में रूपान्तरित करते हैं।

५ 'आदिरूप' या 'आर्किटाइप' का स्वरूप

अचेतन से एक गहरा सम्बन्ध 'आदिरूपों' (Archetypes) का भी है जो मिथिक चेतना के अग भी मान जा सकते है। इन 'आदिरूपों' का सम्बन्ध मिथ से जोड़ा गया और इस प्रकार, मनस्-शक्ति के एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व की ओर सकेत किया गया। व्यक्तिगत अचेतन उन अनेक तत्वों को अपने अन्दर समाविष्ट किये रहता है जो चेतना के द्वारा अग्राह्य और बहिष्कृत किये जाते हैं। ये अग्राह्य और दमित तत्व अन्य मनस तत्वों से सगुम्फित हो, शक्ति और ऊर्जा का रूप ग्रहण कर लेते हैं और अन्तत अचेतन में 'जटिलताओं' को उत्पन्न करते हैं। ये जटिलताएँ एक प्रकार से 'नाभिकीय केन्द्र' के चारों ओर एकत्र हो जाती हैं जो जटिलताओं को एक सूत्र में बाँधे रखती है और इस प्रकार इन जटिलताओं को एक ऊर्जा प्राप्त होती है जो व्यक्ति और समूह के मानसिक जीवन को अनेक रूपों से प्रभावित करती है। युग इन्ही नाभिकीय केन्द्रों को 'आदिरूपों' की सज्ञा देता है जो सामूहिक अचेतन के प्रमुख मनस् तत्व हैं। ये प्रारूप या 'आदिरूप' मानव प्रवृत्ति के मूल तत्व हैं और इनका अस्तित्व प्रत्येक व्यक्ति में प्राप्त होता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि ये 'आदिरूप' किस प्रकार अपना विस्तार करते हैं और अभिव्यक्ति को प्राप्त होते हैं ? मनस् ऊर्जा की यह एक सामान्य प्रवृत्ति होती है कि उसकी अभिव्यक्ति अनेक 'रूपों' में होती है, पर यहाँ पर यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि ये 'आदिरूप' नितान्त 'विशुद्ध' रूप में प्रकट नही

होते हैं। सत्य में ये 'आदिरूप' अभिव्यक्ति को प्राप्त नहीं होते हैं, पर उनके चारों ओर जो 'जटिलताएँ' एकत्र हो जाती हैं, ये जटिलताएँ ही अनेक कल्पनात्मक बिम्बों और प्रतीकों के द्वारा अभिव्यक्त होती हैं, अथवा यह भी कहा जा सकता है कि ये 'जटिलताएँ' मनुष्य के चेतन-जीवन में व्यवधान उत्पन्न करके अनेक रूपों में प्रकट होती हैं।

उपर्युक्त प्रक्रिया को एक व्यक्ति कुछ इस प्रकार भी समझ सकता है। मान लीजिए कि अनेक लेखकों को एक कथानक के मूल तत्व या एक चरित्र के तत्व दिये जाते हैं और उनसे यह कहा जाता है कि इन दिये गये तत्वों के आधार पर अपने तरीके से कथा का सृजन करें, तो हम पाएँगे कि प्रत्येक लेखक की कथा और उसके विवरणों में विभिन्नता होगी, पर इन सारी कथाओं में एक ही मूल 'थीम' की समानता होगी। यही बात आदिरूपों के बारे में भी सत्य है। प्राचीन और आधुनिक धर्मों में, समस्त विश्व के मिथकों आधुनिक मानव के स्वप्नों में और अनेक कल्पनाओं में ये 'थीम' बार-बार प्रकट होते हैं, पर प्रत्येक बार, व्यक्ति, समय और दिक् की सापेक्षता में उनके रूप परिवर्तित होते रहते हैं। इसी से मिथकों को गतिशील कहा जा सकता है, उन्हें किसी भी जाति का 'जीवित स्वप्न' भी कहा जा सकता है क्योंकि वे जाति के अचेतन में गहरे पैठे रहते हैं। मानव मानस के गहनतल में आदिम काल से प्राप्त अनुभवों का संघात रहता है और यही संघात उस अनुभव को एकत्र करता है जो मानव जीवन के सामान्य तथा पुनः पुनः घटित होने वाले तत्वों की गाथा कहता है।

इन आदिरूपों का एक अन्य कार्य भी है। ये उन मार्गों को प्रकट करते हैं जिनके द्वारा मनुष्य अपने बाह्य परिवेश से सम्बन्ध स्थापित करता है जिसमें वह अपनी जिन्दगी व्यतीत करता है। उदाहरणस्वरूप मानव अपने परिवेश में नारी से साक्षात् करता है और उससे समानता और असमानता के धरातल पर अपनी सवादिता को बनाता है और इस प्रकार स्त्री से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए वह एक प्रकार के आन्तरिक झुकाव या अभिवृत्ति से प्रेरित हो उससे (नारी से) सम्बन्ध स्थापित करता है। मानव की इस आदिम इच्छा की पूर्ति एक 'आदिरूप' करता है। ये आदिरूप एसे बिम्बों और प्रतीकों को जन्म देते हैं जिनको हम बाह्य संसार में प्रक्षेपित करते हैं और यह तुलना करते हैं कि हम आन्तरिक बिम्ब के द्वारा बाह्य जगत से किस सीमा तक सम्बन्धित हैं और साथ ही बाह्य जगत के प्रति कितने सजग हैं? अतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा

सकता है कि आदिरूप केवल हमारी मनस्-शक्ति के स्रोत ही नही है, पर बाह्य जगत् के परिज्ञान एव बोध के स्रोत है जिस जगत् म हम रहते है।[1] एक बात यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि आदिरूपा का प्रक्षेपण एक एसी क्रिया है जो व्यक्ति निर्वाचित नही करता है, वह तो स्वय ही घटित होती है। यह स्वय चालित प्रक्रिया मानव इतिहास मे आदिकाल से घटित हो रही है, अन्तर केवल इतना है कि आदि या प्राचीनकाल म इनका आधिक्य था और आधुनिक काल मे अपेक्षाकृत इनकी न्यूनता। इसका कारण युग न यह बताया कि मानव मनस् म एक परिवतन और विकास का लक्षित होना जो उसकी विश्लेषणात्मक बुद्धि का परिचायक है और यह वैज्ञानिक दृष्टि आदिम मानव मे उतनी विकसित नही थी जितनी कि वह आज विकसित है। आदिम मानव प्राकृतिक घटनाओ को (वर्षा, गजन आदि) किसी देवता की क्रिया समझता था जिसे हम आज वैज्ञानिक विधि से समझने का प्रयत्न करते हैं और यह 'समझ' आदिरूपा के प्रक्षेपण को रोकती है। मेरा यह विचार है कि आधुनिक मिथको का स्वरूप प्राचीन मिथको से इस दृष्टि से भिन्न है और यहा पर आकर यह तथ्य स्वय स्पष्ट हो जाता है कि मिथक की एक अपनी सार्वभौम सत्ता है चाहे उसके 'स्वरूप' और 'अथ' म कालक्रम के अनुसार भेद क्या न आ गया हो? इसका यह अथ नही है कि आदिरूपो से मानव का आज साक्षात्कार नही होता है, पर सच तो यह है कि यदि उनका बाह्य जगत् म प्रक्षेपित रूप म (बिम्ब व प्रतीक रूप म) सामना नही होता है, तो आन्तरिक रूप म (मन म) उनका साक्षात होता है। यह आदिरूपा का आन्तरिक साक्षात्कार अन्ततोगत्वा चेतना के स्तर पर अनेक आदि बिम्बा, मिथको और प्रतीको के द्वारा व्यक्त होता है।

यहा पर एक महत्वपूर्ण समस्या सामने आती है। किसी भी आदिरूप के साक्षात्कार के स्वरूप को विवेचित करने मे कठिनाई इसलिए आती है कि व्यक्ति पहले से कुछ पूर्वग्रहीत विचारो पर आश्रित रहता है जो उसके लिए महत्वपूर्ण होते हैं। एक धार्मिक या रहस्यवादी व्यक्ति यह कहेगा कि यह उसका 'ईश्वर' से साक्षात्कार है। एक अध्यात्मवादी यह कहेगा कि यह उसका 'आत्मा' से साक्षात्कार है तथा एक तर्कवादी उसे एक 'गणितज्ञ-मन' के रूप म साक्षात्कार करेगा। इस प्रकार के 'अनुभव' सामान्यत हमारी पहुँच के बाहर है, पर उनके लिए इन 'अनुभवो' का दूरगामी प्रभाव पडता है जो

---

१ माडन साइकोलाजी, डेविड काक्स, पृ० १३८

इन पर आस्था रखा है। इन 'अनुभवों' का रूप भले ही अभिन्न है तथापि मानव-इतिहास में इन अनुभवों का रूप अलग-अलग रहा है जिसमें मानव-मन 'गहराइयों' का भास कर सका है। अतः इन्हें, तार्किक, अनुभव से परे, समय से परे और इसलिए गहन में पर-मार्ग अभिव्यक्त किया जा सकता है। अनेक मनोविज्ञानों के द्वारा इन अनुभवों का स्पर्श नहीं हो सकता है क्योंकि ये योनिताओं में अन्तर नहीं आते हैं पर तो भी इनके द्वारा इनके 'स्वरूप' का विवेचन अवश्य किया जा सकता है।

६ कुछ महत्वपूर्ण आदिरूप

उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में कुछ महत्वपूर्ण 'आदिरूपों' की विवेचना आवश्यक है। ऐसा ही एक आदिरूप है 'छाया' (शैडो)। यह हमारे अन्दर एक गहरा भाग' रूप है, एक प्रकार से एक अन्य 'स्व' जो हममें से प्रत्येक के अन्दर विद्यमान है जो भयंकर और 'पापी व्यक्ति' का प्रतिरूप है। इस छाया का सम्बन्ध व्यक्तिगत अचेतन से है। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि मनुष्य की 'छाया' पूर्णतः पापमय नहीं है, पर यह कहना अधिक न्यायसंगत होगा कि यह 'छाया' उन तत्वों से निर्मित हुई है जिसे व्यक्ति अच्छा या बुरा समझता है। स्वप्न में यह 'छाया' एक काले पुरुष या स्त्री के रूप में दिखाई देती है और चित्रपट तथा दूरदर्शन पर एक बुरे मनुष्य के रूप में सामने आती है जो नायक या 'हीरो' के द्वारा पराजित होती है। अतः यह 'छाया' हमारे चरित्र का एक अभिन्न अंग है जो सदा हमारे साथ रहती है और मनस् प्रकृति का एक अविच्छिन्न और काला भाग है। केवल वे ही वस्तुएँ छाया प्रतिक्षेपित करती हैं जो तीन आयामिक होती हैं। यहाँ पर युंग का यह कथन विचार योग्य है कि यदि हमारे पास ये छायाएँ नहीं हैं, तो हम पूर्णरूपेण 'मानवीय' नहीं हैं। असल में, छाया का यह आदिरूप उन तत्वों से गठित होता है जो हमारे द्वारा बहिष्कृत होकर क्रमशः दमित हो जाते हैं और इस प्रकार इसका दूषित प्रभाव हमारे जीवन पर पड़ने लगता है। अतः यह आवश्यक है कि हम इन 'बुरे तत्वों' के प्रति पूर्ण सचेत रहें और चेतन स्तर पर उनकी आलोचना कर सकें। इस प्रकार हम जो भी बुरे या मूर्खतापूर्ण आचरण करते हैं, उनके प्रति हम स्वयं उत्तरदायी और सचेत हो सकें। ये छायाएं विभिन्न तत्वों से निर्मित होती हैं जो चेतन मन के द्वारा स्वीकृत नहीं होती हैं, अतः यहां यह प्रकल्पना करना आवश्यक है कि एक गहरा आदिरूपगत केन्द्रक

होता है जिसके चारों ओर ये छायाएँ एकत्र होती हैं। इस 'केन्द्रक' का 'राक्षस' पाप या बुरे का एक समष्टि रूप है जो सामान्य रूप से बहुसंख्यक लोगों से प्राप्त होता है। इस संसार में हमारा जीवन अधूरा माना जाएगा यदि हम जगत और मानव स्वभाव के दोनों क्षेत्रों में इन पाप या बुरे (शैतान) के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करेंगे। सत्य में, यह शैतान अच्छे और पुण्य का अनन्य विरोधी है, यह एक प्रकार से पाप या बुरे कर्मों का अन्तर्भूत सिद्धान्त है—एक ऐसा पाप जो घृणा योग्य है, पर 'पापी' स्नेह योग्य है। यह शैतान किसी न किसी रूप में समस्त धर्मों और मिथकों में प्राप्त होता है।

मानव इतिहास के क्रमिक विकास को दृष्टिपथ पर रखकर एक अन्य महत्वपूर्ण आदिरूप का विवेचन आवश्यक है जो स्त्री और पुरुष के काम-आकर्षण और सम्बन्ध पर आधारित है। बुरे 'स्व' (छाया) के साथ ही प्रत्येक मनुष्य में एक स्त्री पक्ष है और प्रत्येक स्त्री में एक पुरुष पक्ष है। अनेक स्त्री पुरुष इस 'अन्य' पक्ष के प्रति नकारात्मक रहते हैं अथवा उसे स्वीकार नहीं करते हैं। सामान्य रूप से ऐसा पाया गया है कि पुरुष की कल्पना और फैन्टसी में नारी का बिम्ब छाया के साथ आता है और युग ने इस बिम्ब को 'अनीमा' की संज्ञा दी है।[1] अनीमा का गठन पुरुष के स्त्री-पक्ष पर आधारित है जो पुरुष के उस अनुभव में सम्बन्धित है जो वह वास्तविक नारी के सम्बन्ध से प्राप्त करता है। 'अनीमा' का आदिरूप यह भी स्पष्ट करता है कि पुरुष अनादिकाल से नारी के प्रति जिज्ञासाश्रित मनोभावों से आकर्षित होता रहा है और वह अपने में कभी 'पूर्ण' नहीं रहा है। यह आदिरूप पुरुष को नारी के संसर्ग की ओर प्रेरित करता है और विसंगति उस समय उत्पन्न होती है जब मनुष्य के इस दूसरे नारी पक्ष को अस्वाभाविक रूप से दमित किया जाता है। नारी ही वह एक और 'अन्य' है जो उसकी आवश्यकता है जिसके बगैर वह अधूरा है। यह 'पक्ष' प्रत्येक चेतन व्यक्ति का एक अभिन्न अंग है।

मनुष्य में अनीमा एक नारी व्यक्तित्व के रूप में प्रकट होती है, परन्तु नारी में अपेक्षाकृत ऐसे व्यक्तित्व प्रधान एक बिम्ब का अभाव रहता है। नारी के स्वप्नों और कल्पनाओं में पुरुष के अनेक बिम्बों का समूह प्राप्त होता है अथवा व्यक्तिवादी पुरुषों के अनेक बिम्ब समक्ष आते हैं। असल में स्त्री और पुरुष की अभिवृत्तियों में यह विरोध अचेतन स्तर पर ही क्रियाशील रहता है और चेतन स्तर पर आकर उसका स्वरूप विपरीत हो जाता है। सामान्य रूप से

---

१ माडर्न साइकालाजी, पृ० १४४

नारी अपनी इच्छा से पूर्ण समर्पण एवं प्रभावशाली व्यक्ति या वस्तु के प्रति करती है जबकि पुरुष अपेक्षाकृत अन्य वस्तुओं के प्रति प्रेरित होता है। यह परिस्थिति अचेतन में नितान्त उल्टा या विपरीत हो जाती है। यही कारण है कि पुरुष की अपेक्षा नारी में अधिक स्थायित्व होता है जहां तक यौन या काम सम्बन्धों का प्रश्न है। पुरुष में, जिसे 'अमीना' की संज्ञा दी गयी है नारी में उसे 'अमीनस' कहा गया है। यदि मानव जीवन में इन्हें एक स्वस्थ और प्रेरणादायक स्थान दिया जाए, तो यह निश्चित है कि नारी और पुरुष के यौन सम्बन्धों में एक सृजनात्मक अभिवृत्ति का स्थान हो सकता है जो केवल 'वासना' पर आधारित नहीं होगा। इस तथ्य को दूसरे शब्दों में रखा जाए तो कहा जा सकता है कि पुरुष 'अमीना' को नारी पर प्रतिक्षेपित करता है जिसके द्वारा वह उसकी ओर आकर्षित होता है और इस प्रकार दोनों के मध्य एक 'सम्बन्ध' का सूत्रपात होता है। दूसरी ओर यही प्रक्रिया स्त्री के पक्ष में भी होती है और वह अपने 'अमीन्स' को पुरुष के प्रति प्रतिक्षेपित करती है।

अमीन्स आदिरूप के सन्दर्भ में 'महामाता' का आदिरूप एक महत्वपूर्ण मिथक के रूप में विकसित हुआ। माता का आदिरूप व्यक्ति के जन्म से सम्बन्धित है जो माता के वास्तविक रूप को प्रकट करता है जिस पर व्यक्ति का जीवन निर्भर करता है। माता का एक अन्य रूप पृथ्वी माता का है जिससे समस्त जीवन का उद्गम होता है। अतः इस आदिरूप के दो पक्ष हैं—एक दयामय व प्रेममय रूप तथा दूसरा खतरनाक और भयंकर रूप। धरती का दूसरा रूप इसलिए खतरनाक और भयकर है कि वह अपने उदर में सभी कुछ को निगल जाती है तथा अपने अन्दर सबको पर्यवसित कर लेती है। यह भी कहा जा सकता है कि धरती से जीवन प्राप्त कर हम अन्ततः मृत्यु के समय उसी में विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार महामाता का आदिरूप मूलतः प्रेम के मनोभावों से सम्बन्धित है।

महामाता के आदि रूप के साथ यातुधान का आदि रूप भी सम्बन्धित है। यातुधान का आदि रूप पुरुष के सिद्धान्त को जो नारी के सिद्धान्त के तद्रूप होते हैं और जिनका सम्बन्ध महामाता के आदि रूप से होता है, उन्हें यातु-धान के एक सूत्र में एकत्र करता है। यह आदि रूप सत्य में, एक प्रकार से यौनगत यातुक्रिया से सम्बन्धित है जिसके द्वारा वह अपने परिवेश या अन्य का सिंचन करता है और इस प्रकार एक नए जीवन का उत्पन्न करता है।

चीनी तथा भारतीय विचारधारा में ये दानों महान् आदि रूप 'स्वग' और 'धरती' के द्वारा प्रकट किए गए हैं। स्वर्ग का रूप क्रियात्मक है जब कि धरती का स्वरूप ग्रहणशील है। इस प्रकार यातुधान का आदि रूप अपने चारा ओर उन तत्वा को एकत्र करता है जिनका सम्बन्ध उन विचारा से है जो सत्य स्वरूप का साक्षात्कार कराते हं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हाता हे कि आदि रूपा का सम्बन्ध अचेतन से होता है। अचेतन से ये आदि रूप मनस् को प्रभावित करते है और मनुष्य का विपरीत स्थितिया म महत्वपूण निदश देते हं। यदि इन आदि रूपा की शक्ति को चेतन स्तर पर क्रियाशील होने का अवसर प्राप्त नही होता ह, तब इन आदि रूपा की शक्ति एक व्यक्ति को या अ य व्यक्तिया का खतरे म डाल सकती है। ऐसी दशा मे एक व्यक्ति आदि रूप के द्वारा अधिकृत रहता ह और यह सम्भव है कि वह या ता बहुत अधिक या कम मानवीय हा सकता है। युग का मनोविज्ञान हम यह निर्देश देता है कि अचेतन मे प्राप्त आदि रूपा के प्रति हम सचेत रह। आदिम मानव म उपयुक्त दोना प्रकार के आदि रूप स्वग और धरती, देवता और दानव के रूप म प्रतिक्षेपित हात रहे हैं। इस प्रकार, मानव न यातु आर अनुष्ठान के द्वारा देवताओं की सृष्टि अपन लिए की और वह यह तथ्य भी भली प्रकार जानता था कि दवता आर दानव मानव मन के दो अग है जिनस वह प्रभावित रहता है। देवता और दानव के आदि रूपा का प्रतिक्षेपण सही या साथक ही नहीं, पर एक प्रकार से आवश्यक भी था क्योकि इनके द्वारा जो घटनाएँ घटित होती थी उनका समझने के लिए एक वैचारिक माडल की आवश्यकता आदि मानव का महसूस हुई थी।

□ □

५ | मिथक की समाजशास्त्रीय एव मानवशास्त्रीय व्याख्या

१ वस्तुगत व्याख्या का आरम्भ

मिथक की व्यापकता और उसकी सास्कृतिक अथवत्ता को स्थापित करने के लिए जहा रूपकात्मकता और मनोविश्लेषण का आधार लिया गया, वही मिथक की व्याख्या का एक अन्य 'स्रूत्र' ने सामाजिक और मानवशास्त्रीय (नृतत्वशास्त्रीय) आधार प्रदान किया। यदि व्यापक रूप म देखा जाए तो सभी व्याख्या-पद्धतियो का लक्ष्य मिथक के रहस्य और उसके अथ को उद्घाटित करना है, यह दूसरी बात है कि कोई पद्धति भाषा को स्वीकार करती है, तो दूसरी अचेतन के द्वारा मिथ-सृजन को समझने का प्रयत्न करती है। ये पद्धतियाँ विषयीगत दृष्टिकोण को अधिक महत्व देती है। आधुनिक काल मे सामाजिक एव मानवीय अध्ययन के फलस्वरूप प्रत्येक मानवीय क्रिया को वस्तुगत दृष्टिकोण से विवेचित करने का प्रयत्न किया गया और मिथक को भी इस दृष्टि स समझने का प्रयास हुआ है। यह मिथक की वस्तुगत व्याख्या का एक ऐसा आधार बना जिसने अनेक विचारको को आकर्षित किया और साथ ही, मिथ-सृजन के एक व्यापक स्रोत की ओर सकेत किया। इस पद्धति ने आदिम जातियो और जनजातियो के रीति-रिवाजो के आधार पर मिथको का सम्बन्ध आदिम मानसिकता से जोडने का प्रयत्न किया। यही काय युग और फ्रायड ने भी किया, पर उसे अचेतन मन से जोड कर अथवा मिथ का अचेतन स्तर से सम्बन्धित कर उस आदिम सस्कार का एक अभिन्न अग माना। समाजशास्त्रीय और नृतत्वशास्त्रीय पद्धति ने आदिम और कबीलायी प्रथाओ और विश्वासो के विश्लेषण और अध्ययन के द्वारा इसी आदिम मानसिकता का एक वस्तुगत आधार प्रदान किया। इस पद्धति ने आदिम जन-जातियो के अध्ययन के द्वारा उनका एक तुलनात्मक रूप भी प्रस्तुत किया जिसने विभिन्न देशो और भूखण्डो म रहने वाली आदिम जातियो म समानता और असमानता को दिखाकर मिथ-सृजन की एक

'समान' मानसिकता को चरितार्थ किया। यही कारण है कि नृतत्वशास्त्रीय और समाजशास्त्रीय पद्धतियों ने मिथ को एक सामाजिक अर्थवत्ता तो प्रदान की, पर उसके सम्पूर्ण 'सांस्कृतिक' महत्व का कदाचित् रेखांकित नहीं कर सका। फिर भी, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस व्याख्या-पद्धति ने मानव की सृजन क्रिया को एक ऐसा आधार प्रदान किया जो बहुत कुछ वैज्ञानिक पद्धति का भी प्रभाव माना जा सकता है।

२ जडात्मवादी प्रक्रिया—

इस व्याख्या-पद्धति के क्रमिक विकास को समझने एव हृदयगम करने के लिए यह आवश्यक है कि हम इस क्षेत्र के कुछ विचारकों के मतो का विश्लेषण करें जिन्होंने इस व्याख्या-पद्धति का एक वैज्ञानिक एव सामाजिक आधार प्रदान किया। इन विचारकों म एड्रयू लग, फ्रेजर टेलर, मेलिनोवस्की और लीवी स्त्रास का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जैसा कि पहले ही सकेत किया जा चुका है कि मिथिक चेतना का सम्बन्ध भाषा और भाषिक सरचना स है और इस सन्दर्भ म मैक्समूलर या (माक्षमूलर भट्ट) की यह प्रस्थापना कि मिथक-सृजन एक प्रकार की भाषिक विकृति अथवा बीमारी है, इसके विरोध मे स्कावी विद्वान एड्रयू लैंग ने अपना यह मत रखा कि मिथ का सम्बन्ध सस्कृति की जडात्मवादी (Animism) दशा से है जिसमे प्राकृतिक शक्तियों और वस्तुओं का एक आश्चर्य और भय की भावना से देखा गया और फलत उन्हें मानवीकृत रूप म प्रस्तुत किया गया। यह मानवीकरण की प्रक्रिया समस्त धर्मों और मिथकों म किसी न किसी रूप म प्राप्त होती है। यही कारण है कि टेलर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'आदिम सस्कृति (Primitive Culture) म जडात्मवाद को धर्म का सबसे प्राचीन और आरम्भिक रूप स्वीकार किया है।[1] इस अवधारणा का सबसे महत्वपूर्ण अश मिथक की दृष्टि से यह है कि मिथक का सम्बन्ध समस्त प्राकृतिक-शक्तियों से है, वह केवल सूर्य और चन्द्रमा स ही सम्बन्धित नहीं है। मिथक का सम्बन्ध एक प्रकार स सम्पूर्ण प्रकृति स है। मानवीकरण की यह प्रक्रिया अपने आरभिक रूप म एक अन्य तथ्य की ओर सकेत करता है कि आदिम मानव ने प्रकृति

---

१ प्रिमिटिव कल्चर, टेलर, पृ० ७-८
२

और उसकी शक्तियों को जानने का जो उपक्रम किया, वह मिथ और प्रतीक-सृजन का एक ऐसा स्रोत था जिसने मानव की प्रागतार्किक-शक्ति का परिचय दिया।[1] देवी-देवताओं की अवधारणा में इस तथ्य का संकेत प्राप्त होता है जो एक प्रकार से पूजा-भावना और टोटमवाद का जन्म दे सकी।[2] इस प्रकार स्पष्ट होता है कि धार्मिक भावना के विकास में जडात्मवाद का योगदान तो अवश्य है, पर सम्पूर्ण धार्मिक एवं पौराणिक चेतना का केवल उसी का विकास मानना 'यथार्थ' और संस्कृति की गत्यात्मकता के प्रति आँख मूंद लेना है। मुझे कभी-कभी ऐसा लगता है कि मानवशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों ने संस्कृति और धर्म के सीमित अर्थ को ही ग्रहण किया है, उसके व्यापक अर्थ-सन्दर्भ को ग्रहण नहीं किया है। जनजातियों और आदिमजातियों के अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों का महत्व तो अवश्य है, पर केवल उन्हीं के आधार संस्कृति की व्याख्या करना, संस्कृति के व्यापक अर्थ को एक प्रकार से नजरअन्दाज करना है।

३ यातुक अनुष्ठान और मिथक

सामाजिक एवं मानवशास्त्रीय व्याख्या के अन्तर्गत एक अन्य स्कूल के विचारकों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है जिसका सम्बन्ध अंग्रेजी नृतत्वशास्त्रियों से जोड़ा गया है। इस स्कूल के प्रमुख व्यक्ति थे सर जेम्स जार्ज फ्रेजर, जेन हैरीसन और गिलबर्ट मूरे। इनमें से फ्रेजर का स्थान प्रमुख है क्योंकि उसने सर्वेक्षण के आधार पर आदिम जातियों की प्रथाओं और अनुष्ठानों (रिच्यूअल) का विश्लेषण प्रस्तुत किया जिसने मिथ और प्रतीक की व्याख्या को एक वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। इन विचारकों ने अनुष्ठान और यातु (जादू) को आधार बनाकर प्राचीन पूर्वीय और ग्रीक मिथकों का विवेचित करने का प्रयत्न किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इन यातुक अनुष्ठानों के द्वारा मानव ने प्राकृतिक शक्तियों और वस्तुओं को अपने अधिकार में करने का प्रयत्न किया, तो दूसरी ओर इन अनुष्ठानों के द्वारा प्राकृतिक घटनाओं को भी समझने का प्रयत्न किया। इस दृष्टि से यह भी माना गया कि यातु का सम्बन्ध और उसका स्वरूप विज्ञान के समकक्ष है और इसी से, यातुक अनुष्ठानों को आभासी विज्ञान

---

१ इस शक्ति का संकेत मनोवैज्ञानिक व्याख्या के अन्तर्गत किया जा चुका है।

२ दि माइंड आफ प्रिमिटिव मैन, फ्रैंज बास, पृ० २१

(सूडो साइंस) की संज्ञा दी गयी।[1] दूसरी ओर यह भी सत्य है कि यातु एक विलक्षण और अद्भुत क्रिया है, पर एक यथार्थ क्रिया है जिसका लक्ष्य और उद्देश्य वैज्ञानिक है। यातुक क्रियाएँ और अनुष्ठान अपरिवर्तनीय एवं स्थिर नियमों से अनुशासित होती है। इसी से फ्रेज़र आदि विचारकों ने यातुक-अनुष्ठानों को प्रकृति की व्यवस्था में एक यथार्थ और स्थिर क्रिया माना है जो अपने में एक विश्वास का रूप है।[2] इस प्रकार, यातु अतिमानवीय जगत पर नियन्त्रण करने की शक्ति है जिसका प्रयोग शुभ या अशुभ कार्यों में लिया जाए। इस दृष्टि से, यातु एक प्रकार का तन्त्र है (भारतीय शब्दावली में) जिसके प्रमुख तत्व हैं—शब्द, शब्दोच्चारण, यातुधान और इनसे सम्बन्धित कर्मकाण्ड या क्रियाएँ। इन यातुक अनुष्ठानों और क्रियाओं के द्वारा मानव और बाह्य प्रकृति के बीच एक प्रतिक्रियात्मक सम्बन्ध स्थापित हुआ और साथ ही प्रकृति की भयावह और विध्वंसक शक्तियों का प्रमर्दन करने के लिए अथवा उन पर अधिकार प्राप्त करने के लिए उन्होंने एक 'माध्यम' की खोज की और उसकी मानसिकता की दृष्टि से ऐसे अभिप्रायों और उनसे सम्बन्धित कथाओं का सृजन किया जो उनके इस कार्य का सम्पन्न करा सके या कर सके। कुछ विचारकों के अनुसार आदिमानव की यह अवस्था जब उसने प्रथम मिथकों का सृजन किया, तब उसने अपने और प्रकृति के बीच सम्बन्ध ही स्थापित नहीं किया, पर प्रकृति शक्तियों का दिव्य रूप में आवाहन किया। इस दृष्टि से, मानवशास्त्रियों का यह विचार है कि निएंडरथल मानव प्रथम ऐसा मानव था जिसने मिथ सृजन का प्रारम्भ किया और इसी के बाद मिथ और धर्म एक सामाजिक रूप में विकसित हुए।[3] फ्रेज़र आदि विद्वानों ने अग्नि वृक्ष और आकाश पृथ्वी से सम्बन्धित अनुष्ठानों और उत्सवों के विश्लेषण के द्वारा यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि अनुष्ठानों, उत्सवों और यातुक रीतियों का विवेचन मिथ के द्वारा ही होता है अथवा इन अनुष्ठानों और उत्सवों में मिथ ही प्रतीकीकृत होते हैं। इस दृष्टि से मिथ और अनुष्ठानों का एक गहरा और अविच्छिन्न सम्बन्ध है।[4] यदि

१ ए एस आन मैन, वेमिरर, पृ० ७८

२ दि गोल्डन बो, ए स्टेडी इन मैजिक ऐण्ड रेलिजन, फ्रेज़र, पृ० ११० भाग १, पुस्तक २

३ दि प्रिमिटिव रीडर, सम्पादक, जॉन ग्रीनवे, पृ० ६-७

४ इस प्रकार के मिथकों का विवेचन 'अनुष्ठानिक और यातुक मिथ' के अन्तर्गत किया जाएगा।

व्यापक दृष्टि से कहा जाए तो समष्टि रूप से यह कहा जा सकता है कि आदिम मानव की मानसिकता में नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, वृक्ष, वन, मेघ, अग्नि, ऋतुएँ तथा देवगण आदि अपनी सारी नाटकीयता के साथ अभिनय करते प्रतीत होते हैं और कभी-कभी ऐसा लगता है कि यह नाटक भ्रमपूर्ण है, पर असल में उस भ्रम के पीछे आदिम मानव की प्रागतार्किक अवस्था और साथ ही, उनकी आस्था और विश्वास का प्रतिरूप मिलता है। आदिम और प्राचीन मानसिकता की यह समानता यह तथ्य भी प्रकट करती है कि मानसिक विकास की समान परिस्थितियाँ एक ही प्रकार के या उनसे मिलते-जुलते मिथकों और अनुष्ठानों की सृष्टि करती है जो हम आदिम समाजों में तथा भारतीय, रोमी, ग्रीकी, और सेमेटिक जातियों में प्राप्त होती हैं।[1] इससे यह भी प्रतीत होता है कि अनुष्ठानों, यातुक रीतियों और संस्कारों ने मानव की दिव्य धारणा को भी विकसित किया और कुछ विचारकों का तो यहाँ तक मत है कि दिव्य भावना का आविर्भाव अनुष्ठानों से हुआ है और ब्रह्मशास्त्र का आविर्भाव मिथकों से हुआ है।[2] यदि गहराई से देखा जाय तो दिव्यता की भावना अनुष्ठानों में भी है और ब्रह्मविज्ञान (Theology) में भी प्राप्त होती है, अन्तर केवल इतना है कि ब्रह्मविज्ञान एक तार्किक क्रिया है जब कि अनुष्ठान एक प्रकार से कर्मकाण्ड है जिसमें विश्वास का गहरा पुट होता है। मिथ का स्थान दोनों में समान रूप से प्राप्त होता है। क्योंकि मिथकीय सृजन अन्ततः ब्रह्मविज्ञान और अनुष्ठान में अपना योगदान देता है।

४ अनुष्ठान और सामाजिक संगठन

सैद्धान्तिक रूप से अनुष्ठानों और यातुक रीतियों का उपर्युक्त महत्व एक अन्य तथ्य की ओर भी संकेत करता है जो अपने प्रतीकात्मक अर्थ के साथ सामाजिक संगठन की ओर भी संकेत करता है। अनुष्ठानों और यातुक रीतियों का यह सामूहिक महत्व इस बात में समाहित है कि अनुष्ठानों और उत्सवों में मानव एक प्रकार से, सामूहिक शक्ति का अनुभव करता था। यह शक्ति, एक सीमित क्षेत्र में (जहाँ तक आदिम मानव का सम्बन्ध है) उस समूह में रहने वाले व्यक्तियों को जहाँ एकसूत्र में बाँधती थी, वहीं उन्हें यह भी अनुभव कराती थी कि उनकी वैयक्तिक शक्ति सामूहिक शक्ति से कहीं नीचा है। यदि गहराई से

१ कस्टम एण्ड मिथ, एण्ड्रयू लैंग, पृ० २२
२ फिलासफी इन ए न्यू की, सूसेन लैंगर, पृ० १३८

देखा जाए तो यह आदि प्रवृत्ति व्यक्ति की सत्ता को अतिक्रान्त कर एक वृहत्तर या सामूहिक सत्ता की ओर गतिशील होती है और साथ ही, व्यक्ति का 'समूह' के प्रति एक दायित्व है, इस भावना को भी जन्म देती है।

५ टोटमवाद और मिथक

सामाजिक चेतना के उदय में एक अन्य मानवीय क्रिया का भी महत्वपूर्ण योगदान है जिसने पशु, पक्षी और प्राकृतिक वस्तुओं के इर्द-गिर्द अपनी भावना और विश्वास को केन्द्रित किया और उस वस्तु और जीवधारी को एक 'पवित्रता' की भावना से ओतप्रोत कर उसे एक 'टोटम' के रूप में स्वीकार किया। श्री हावल, फ्रायड, फ्रेजर, ब्राउन और गाल्डनवीजर के अनुसार गोत्र (Clan) का नाम, अनेक आदिम जातियों और जनजातियों में, किसी पशु, पक्षी, वनस्पति अथवा प्राकृतिक पदार्थ से लिया गया और गोत्र (समूह) के सदस्य उस पशु या वस्तु के प्रति एक विशेष प्रकार का मनोभाव रखते थे जिसमें पवित्रता और श्रद्धा का भाव समाहित रहता था। इस प्रकार 'टोटम' एक प्रकार से पूजा-भावना को विकसित कर सका और साथ ही उस समूह के व्यक्तियों को एक 'संगठन' प्रदान कर सका। यही नहीं एक टोटम-समूह दूसरे टोटम-समूह (गोत्र) से विवाह भी नहीं करता था और इस प्रकार एक टोटम दूसरे के लिए 'टैबू' बन गया। यह प्रवृत्ति आदिम जातियों में सामान्य रूप से प्राप्त होती है और अनेक प्राचीन संस्कृतियों में (यथा चीन, भारत, मिश्र, बेबीलोनिया आदि) टोटम उपासना का स्वरूप अब भी सुरक्षित प्राप्त होता है।[१]

उपर्युक्त विवेचन की दृष्टि से यह स्पष्ट होता है कि 'टोटम' एक प्रतीक है और 'टोटमवाद' एक संस्था है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि टोटम की संस्थागत अभिव्यक्ति 'टोटमवाद' है।[२] इसी के आधार पर दुर्खीम ने टोटमवाद को धर्म का प्रारम्भिक रूप माना है। यह मत पूर्ण सत्य नहीं है क्योंकि *धर्म न गोत्र है और न केवल वस्तुओं का रहस्य संबंध।* अधिक से अधिक यह माना जा सकता है कि धार्मिक चेतना के विकास में 'टोटमवाद' केवल एक तत्व के रूप में अपना योगदान दे सका न कि उसने धर्म का रूप ही ले लिया।

---

१ इस पक्ष का पूर्ण विवेचन 'टोटमी-मिथ' अध्याय के अन्तर्गत आगे किया जाएगा।

२ सामाजिक मानवशास्त्र की रूपरेखा, रवीन्द्रनाथ मुखर्जी, पृ० ४१०

धर्म, टोटमवाद से कहीं अधिक व्यापक और सारग्राही मानवीय क्रिया है। अधिक से अधिक हम यह कह सकते हैं कि 'टोटमवाद' विचार-प्रक्रिया का एक 'प्रकार' है और इस दृष्टि से वह विचार (भाव) को एक रूपकात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है।[1]

६ टोटम और टैबू

टोटम का अध्ययन और उसका विश्लेषण एक अन्य तथ्य प्रकट करता है कि टोटम का अध्ययन 'टैबू' के द्वारा पूरा होता है अथवा टोटम और टैबू एक दूसरे के पूरक हैं क्योंकि अक्सर यह देखा गया है कि एक समूह का टोटम दूसरे टोटम का शत्रु होता है जैसे मूषक बिडाल, नाग-सर्प, वानर-हाथी आदि जिनका संकेत हमें अनेक प्राचीन पुराणगाथाओं (मिथ) में प्राप्त होता है। मानव-शास्त्रियों का यह मत है कि अनेक देवताओं की अवधारणाओं में, (जैसे 'गणेश, विष्णु दो जीवधारियों की अन्तर्भुक्ति इस बात की सूचक है कि दो जातियों का सम्मेलन सम्भव हो सका जिसने अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक संगठन को बल प्रदान किया।[2] टैबुओं का स्वरूप एक अन्य सत्य की ओर संकेत करता है कि टैबू की धारणा में एक प्रकार का नकारात्मक घृणा का भाव अन्तर्निहित रहता है और यही कारण है कि टैबू में संघर्ष और द्वन्द्व का स्वरूप प्राप्त होता है। उदाहरणस्वरूप अरब और सीरिया में सुअर को अशुभ एवं घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, तो गाल, केल्ट और स्केंडीनविया में सुअर को पवित्र माना जाता है, अतः सुअर यहाँ 'टोटम' है और अरब आदि देशों में 'टैबू' है। इस प्रकार हम देखते हैं कि टैबू में एक प्रकार का वर्जना का भाव समाहित रहता है और अनेक दक्षिण-पूर्वी जातियों (आदिम) अक्सर यह भी देखा गया है कि जिस वस्तु का वहाँ पर अभाव रहता है, उस वस्तु के प्रति (न प्राप्त होने के कारण) उनमें एक प्रकार का 'टैबू' उत्पन्न हो जाता है। दक्षिण-पूर्वीय जनजातियों में मछली का न प्राप्त होना उसके प्रति टैबू को जन्म देता है और उसके न खाने की आदत क्रमशः एक टैबू के रूप में स्थिर हो जाती है।[3] इससे यह भी सिद्ध होता है कि टोटमिक एवं टैबू मिथकों में एक स्थिरता एवं अटल मनोभाव के

---

१ दि फिलासफी इन ए न्यू की, लैंगर, पृ० १३४

२ संस्कृति और समाजशास्त्र, डॉ० रांगेय राघव, पृ० १२३

३ द माइंड ऑफ प्रिमिटिव मैन, फ्रैंज बॉस, पृ० २३५

दर्शन भी होते है। यही नही यदि गहराई से देखा जाए तो टैबू सस्कृति के सबसे प्राचीन अलिखित कानून है। यदि किसी भी समाज म टैबुओ की प्रवृत्ति को देखा जाय तो वे अधविश्वास से लगते हैं, तो दूसरी ओर व क्रमश हमारे सामाजिक प्रतिमानो को निर्धारित करते है।

उपयुक्त विवेचन से एक अन्य तथ्य यह भी प्रकट होता है कि टैबू (और टोटम) की भावना का मूलस्रोत जडात्मवाद ह और सास्कृतिक विकास की उच्च दशाओ म इसका रूपान्तरण निर्वैयक्तिक यातुक शक्तियो म हुआ। टैबू जहा एक ओर सामाजिक सगठन म योग देता है, वही वह नैतिकता की भावना को उत्पन्न करता ह। यह सच है कि इस नतिक भावना का उदय नकारात्मक है और उसका स्वरूप इस प्रकार का ह जो आदिम मानसिकता को स्पष्ट करता ह और साथ ही, सास्कृतिक विकास प्रक्रिया म एक भावनात्मक एव वैचारिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है। इस प्रकार हम देखत है कि मिथिक-चेतना के विकास मे अनुष्ठान, यातु, टोटम और टैबू सभी का न्यूनाधिक रूप से योगदान रहा है। इसे और व्यापक रूप म कहा जाए, तो सास्कृतिक विकास-क्रम म इन समस्त आदिम कही जाने वाली मन स्थितियो मे हमारी आज की अनेक अवधारणाओ एव मिथको का स्रोत प्राप्त होता है।

७ समाज, इतिहास और मिथक

मिथ की सामाजिक और मानवशास्त्रीय व्याख्या सौरवादियो की व्याख्या से विपरीत है जो वह मानते हैं कि प्राकृतिक घटनाएँ ही मिथ-सृजन की आधारभूमि है। जैसा कि सकेत किया गया कि समाजशास्त्रीय व्याख्या यह मानकर चलती है कि मिथको का स्रोत प्रकृति नही, पर समाज है। दुर्खीम, मैलिनावस्की और लीवीस्त्रास आदि समाजशास्त्रियो न इसी मत को किसी न किसी रूप म स्वीकार किया है। इन विचारको के लिए मिथ एक ठोस महत्व-पूर्ण सामाजिक वास्तविकता है। आदिम जातियो के रीतिरिवाजो और उनके विश्वासो के आधार पर यह कहा गया कि जितने भी मूल अभिप्राय हैं, वे सामाजिक जीवन के प्रतिक्षेपण है, उनकी अभिव्यक्तियां है।[1] प्रकृति और अतीत, इन दोनो म आदिम मानव की अभिरुचि अपन समाज की व्यावहारिक समस्याओ द्वारा उत्पन्न एव निर्धारित हुआ करती थी। सामाजिक व्याख्याकार मिथ को केवल सामाजिक व्यवस्था का सरक्षक मानते हैं। उनम इतिहासकार

१ लोक साहित्य और सस्कृति, डॉ० दिनेश्वर प्रसाद, पृ० ११-१२

की दृष्टि का खोजना व्यर्थ है। इसी के आधार पर लीवी स्त्रास का तो यहाँ तक मत है कि आदिम जातियों म इतिहास-बोध नहीं होता है। परन्तु, यदि गहराई से देखा जाए तो आदिम कही जाने वाली परम्पराओं और विश्वासों म 'इतिहास का स्वर' अथवा इतिहास का आभास अवश्य प्राप्त होता है। सास्कृतिक इतिहास के क्रमिक विकास मे इस आदिम इतिहास को कैसे नजर-अन्दाज किया जा सकता है? मिथ जब एक प्रकार से सामाजिक जीवन के प्रतिरूप हैं या प्रतीक है, तो उनका अपना एक ऐतिहासिक महत्व है। कदाचित यही कारण है कि मिथ या पुराण को भारतीय विचारधारा म 'इतिहास' की सज्ञा दी गयी है जो बाह्य या भौतिक इतिहास के अतिरिक्त मानव के आतरिक इतिहास को प्रस्तुत करते हैं। इस दृष्टि स मिथिक चेतना का सम्बन्ध व्यापक मानवीय क्षेत्र से है जिसमे बाह्य और आतरिक सत्य का समागम होता है। सामाजिक एव सास्कृतिक दृष्टि स देखा जाए तो मिथ का एक अपना ऐतिहासिक महत्व है, यह दूसरी बात है काल और विश्वास परिवर्तन की सापेक्षता म उनमे रूपान्तरण हो जाए। इस दृष्टि स मैलिनावस्की का यह मत कि प्रत्येक ऐतिहासिक परिवर्तन अपने मिथ की कल्पना करता है, वह केवल आदिम-युग से सम्बन्धित नही है। असल म मिथ के व्यापक स्वरूप को प्रस्तुत करता है परन्तु दूसरी ओर मैलिनोवस्की का यह कथन कि किसी विश्वास, रीति या अनुष्ठान के बदल जाने पर उससे सम्बद्ध मिथ भी समाप्त हो जाता है और उसके स्थान पर नए मिथो का विकास होता है, पूर्ण रूप से सत्य नही है।[1] इसका कारण यह है कि मिथ कभी समाप्त नही होते ह, उनका समय और विश्वास के आधार पर रूपान्तरण होता है वे नए सदर्भों को सापेक्षता म रूपान्तरित होते हैं। यह तो अवश्य हो सकता है कि कुछ मिथको म, अन्य मिथको की अपेक्षा 'लोच' शक्ति अधिक हो जिससे कि उनका रूपान्तरण (नए सन्दर्भों म) अनेक प्रकार स हो सका हो। इसी से, यह देखा गया है कि किसी भी जाति म कुछ मिथको की सामाजिक प्रासगिकता अपेक्षाकृत अधिक होती है जो अपने समय की समस्याओं को अधिक तर्कसगत रूप से प्रस्तुत कर सकने मे समर्थ होती हैं। इडीपस, जीहोवा, सैमसन, गिल्गामिश, नचिकेता, रामकृष्ण आदि से सम्बन्धित मिथको का महत्व इसी दृष्टि स अधिक है। सामाजिक एव ऐतिहासिक परिवर्तन की सापेक्षता म इनका पुनर्विवेचन समय-समय पर होता रहा है जो उनकी 'लोच शक्ति' का ही परिचायक ह। इसी से, मिथिक चेतना

१ एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, पृ० ११२३

का स्वरूप 'गत्यात्मक' है और साथ ही, सामान्य भावों और विचारों का आरम्भिक प्रतीकीकरण है।[1] इसी के आधार पर मिथ का सम्बन्ध विचार-प्रक्रिया से है और यह उसका एक ऐसा पक्ष है जो मिथ को जहाँ एक ओर सामाजिक परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है, वहीं उसे मानव के मानसिक इतिहास का एक अभिन्न अंग घोषित करता है। इस दृष्टि से मैलिनोवस्की की मिथिक व्याख्या सामाजिक होते हुए भी अधिक व्यापक है और साथ ही यह व्याख्या मिथ की सार्वभौम सत्ता को, उसके व्यापक अर्थ को तथा उसके जीवन्त रूप को रेखांकित करती है। समष्टि रूप से यह कहा जा सकता है कि मैलिनोवस्की की मिथ व्याख्या जीवित सांस्कृतिक सन्दर्भ में उसका विश्लेषण करती है और सांस्कृतिक प्रक्रिया में उसके महत्व को रेखांकित करती है।[2]

८ संरचनात्मक व्याख्या

मिथ की व्याख्या उस समय तक अधूरी रहेगी, जब तक कि एक अन्य महत्वपूर्ण व्याख्या का उल्लेख न किया जाए। इस व्याख्या के जन्मदाता क्लाद लेवी स्त्रास हैं जिसने मिथ को संरचनात्मक मानव शास्त्र के (Structural Anthropology) प्रकाश में विवेचित एवं विश्लेषित किया। स्त्रास ने १९६५ में एक निबन्ध, 'मिथ का गठनात्मक अध्ययन' के द्वारा 'मिथ-विज्ञान' के स्वरूप को समक्ष रखा और मिथ के अध्ययन को एक सांस्कृतिक अर्थवत्ता प्रदान की। इस व्याख्या-पद्धति को विकसित करने में उसने संरचनात्मक मानवशास्त्र मनोविज्ञान, मार्क्स का द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त और सूचन सिद्धान्त (Informational Theory) का विशेष रूप से उपयोग किया, उसने ब्राजील की बारोरो मिथ और दक्षिण अमरीका की आदिम जातियों में प्रचलित नायक और अग्नि मिथकों के विश्लेषण के द्वारा यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि मिथ 'अर्थों के सम्प्रेषण की एक व्याख्या है और मानव-संस्कृति इन्हीं अर्थों को किसी न किसी रूप में सम्प्रेषित करती है।[3] यदि गहराई से देखा जाए तो मानव संस्कृति 'अर्थों के सम्प्रेषण की एक व्यवस्था है और मिथ इन व्यवस्थाओं में से एक उपव्यवस्था है। मिथ एक प्रकार से इस अव्यवस्था में

---

१ फिलासफी इन एन्यू की, लेंगर, पृ० १६३

२ लोक साहित्य और संस्कृति, डा० दिनेश्वर प्रसाद, पृ० ३२

३ माइथोलाजी, स० एडमण्ड लीच, पृ० २६०

व्यवस्था की धारा है। भाषा अर्थों की वाहक है और अर्थों की व्यवस्था ही संस्कृति की अर्थवत्ता है। इस दृष्टि से, भाषा और मिथ (संस्कृति) का एक गहरा सम्बन्ध है जिसकी ओर पहले ही संकेत किया जा चुका है।[1]

लेवी स्त्रास ने फ्रायड, फ्रेजर और केसिरर की प्रतीकवादी व्याख्या को ही एक अन्य आधार प्रदान किया और प्रतीकवादी विश्लेषण के संशोधित रूप को ही 'सरचनात्मक' निक्षेपण की संज्ञा प्रदान की। उसका कहना है कि समान सांस्कृतिक परिवेश में जो मिथ और अनुष्ठान प्राप्त होते हैं, वे मूलतः एक समान 'सरचना' को दर्शाते हैं। यदि एक मिथ के तत्व और उसके सम्बन्धित अनुष्ठान के तत्वों को एक तार्किक योजना का आधार प्रदान किया जाए, तो हम पाएँगे कि मिथ और उससे सम्बन्धित 'रीति' या 'अनुष्ठान' एक ही प्रकार की 'बात' या 'अर्थ' सम्प्रेषित करते हैं। किसी भी मिथ के अर्थ को प्राप्त करने के लिए सबसे अच्छी पद्धति यह है कि उस मिथ विशेष के उन विभिन्न 'रूपों' को एक स्थान पर एकत्र कर लिया जाए, चाहे उनका स्रोत और समय भिन्न-भिन्न ही क्यों न हो? इससे उस मिथ का 'मूल तत्व' प्राप्त हो जाएगा जो उसकी तार्किक 'सरचना' को व्यक्त करेगा। यह 'सरचना' उन समस्त विभिन्न रूपों में अन्तर्धारा के समान प्राप्त होगी। एक ही मिथ के विभिन्न पाठान्तरों (रूपों) के प्रकाश में उस मिथ का सरचनात्मक 'केन्द्र' प्रकट हो सकेगा जो मिथ के व्यापक 'अर्थ' को सम्प्रेषित करने में समर्थ होगा।[2] इसे ही मैंने 'मिथक' की संज्ञा दी है जो किसी भी मिथ का (पुराख्यान) का मूल तत्व है—उसकी केन्द्रीय सरचना है।[3] यदि स्त्रास के उपर्युक्त मत को स्वीकार किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वह मिथ को एक 'तार्किक माडेल' के रूप से स्वीकार कर रहा है जिससे मिथ को, उसके अनेक अन्तर्विरोधों के साथ (सामाजिक, यौनपरक आदि) एक तार्किक रूप में स्वीकार किया जा सके। मिथ का यह व्यापक परिप्रेक्ष्य उस समय अधिक अर्थवान हो सकेगा जब मिथ के 'समूह' या 'गुच्छ' को लिया जाए। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह कार्य मिथ के एकान्त अध्ययन से नहीं होगा, पर मिथ के समूह या 'गुच्छ' के द्वारा हो सकता है। इस पद्धति में यह अवश्य हो

---

१ देखें—रूपात्मक व्याख्या, अध्याय ३

२ द स्ट्रक्चरल स्टडी ऑफ मिथ? लेवी स्त्रास, सं० इ० नेल्सन, हेयस, एण्ड्रमड लीच का लेख, पृ० ४०

३ देखिए, 'मिथ की परिभाषा और स्वरूप' प्रथम अध्याय।

सकता है कि ये 'गुच्छ' कहीं पर समानता के तत्वों को दर्शाये और कहीं पर असमानता के तत्वों को प्रगट करे। परन्तु सामूहिक रूप से इन तत्वों को लेने पर जो अन्तर्विरोध की श्रेणियाँ हैं, उनमें अवश्य ही धूमिलता या कमियाँ आएँगी।

लेवी स्त्राम ने अपने इस सिद्धान्त का प्रतिपादित करने के लिए अनेक उदाहरण दिए हैं, उनमें से एक उदाहरण प्यूब्लो मिथ से सम्बन्धित है। मिथ समूह या 'गुच्छ' एक केन्द्रीय समस्या को प्रस्तुत करते हैं जिसका सम्बन्ध जीवन और मृत्यु से है। यह मिथ गुच्छ जीवन और मृत्यु के भेद को कम करते हैं या उनमें तारतम्य का अनुसंधान करते हैं। हम मिथ में तीन प्रकार के श्रेणीगत अन्तर पाते हैं—कृषि, आखेट और युद्ध। कृषि मानव के लिए जीवन का आधार है, पर पशुओं के लिए मृत्यु का रूप है। अतः यह मध्यस्थता करती हुई 'श्रेणी' है। इसी मिथ गुच्छ का एक अन्य रूपान्तरण त्रिविध श्रेणी अन्तर को प्रकट करता है, वह है घास खाने वाले पशु, काला कौआ और परभक्षी प्राणी। प्रथम श्रेणी के पशु निरामिष हैं और वे जीवित रहने के लिए किसी प्राणी को नहीं मारते हैं, परन्तु द्वितीय और तृतीय श्रेणी के पशु मांसाहारी हैं। काला कौआ जीवित रहने के लिए किसी जीव को मारता नहीं है। इन दोनों वर्गों का एक साथ लेने पर और उनकी प्रतीकात्मक संयोजना को ध्यान में रख कर लेवी स्त्रास इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि इन संयोजनाओं के अनुक्रम से एक तार्किक माडल की सृष्टि होती है जो यह स्पष्ट करती है कि जीवन और मृत्यु एक सिक्के के मात्र दो पक्ष नहीं हैं और न जीवन का आवश्यक फल है मृत्यु। इसी प्रकार, लेवी स्त्रास ने इडीपस मिथ की केन्द्रीय समस्या स्वरतिमूलक सृष्टि को माना है और इस प्रकार मानवता की सृष्टि 'पाप' से हुई है।[1]

उपरिलिखित व्याख्या के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि मिथ के अनेक स्तर होते हैं। तथ्य और मिथ का एक द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध होता है। इसी के साथ मिथ की संरचना के दो महत्वपूर्ण पक्ष होते हैं—एक कालक्रम का पक्ष जिसमें घटित घटनाओं का अनुक्रम होता है और दूसरे, घटनाओं की सम्बद्धता या संयोजन। यहाँ पर ऐसा प्रतीत होता है कि लेवी स्त्रास मिथिक प्रतीकात्मकता को गणितीय प्रतीकात्मकता के समान मानता है, पर यह प्रश्न फिर

१ लेवी स्त्रास, स० नेल्सन हेयस, पृ० ५१

भी बना रहता है कि क्या मिथ की संरचना पूर्ण रूप से गणितीय पद्धति से समझी जा सकती है क्योंकि मिथ कोई यान्त्रिक वस्तु नहीं है जो किसी पूर्व निश्चित गणितीय प्रक्रिया के द्वारा समझी जा सके। अधिक से अधिक इतना कहा जा सकता है कि मिथ के विश्लेषण में यह पद्धति किसी सीमा तक कारगर हो सकती है और तुलनात्मक रूप से विभिन्न मिथ-गुच्छों के अभिप्रायों को एक तत्-संगत रूप में प्रस्तुत कर सकती है। लेवी स्त्रास ने आसदीवाल की कथा तथा गाराधीय गिट्सैन कथा और रेड इण्डियन (अमरीका) में उसके रूपान्तरण की चर्चा कर उनसे प्राप्त विभिन्न अभिप्रायों का एक तुलनात्मक रूप प्रस्तुत किया है जो मिथ-चिन्तन के व्यापक परिप्रेक्ष्य को प्रकट करता है।

यहाँ पर लेवी स्त्रास मिथ को एक अन्य सन्दर्भ भी देता है और वह है एक मिथ का एक संस्कृति से दूसरे संस्कृति में प्रवेश पाना अथवा उसके कुछ तत्वों एवं अभिप्रायों का दूसरी संस्कृति में परिवर्तित रूप में या उसी रूप में रूपान्तरित होना। जब एक संस्कृति का मिथ दूसरे में प्रवेश करता है, तो वह विकृति की प्रक्रिया से गुजरता है, परन्तु उसके परिवर्तन या रूपान्तरण की एक ऐसी सीमा आती है कि वह पुनः आंशिक रूप से स्पष्ट होने लगता है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि लेवी स्त्रास का यह 'संरचनात्मक विश्लेषण अनेकों को प्रभावशाली और प्रखर लगे, पर इतना निर्विवाद रूप से सत्य है कि यह पद्धति ही एकमात्र मिथ व्याख्या की सार्थक पद्धति नहीं है— एक दृष्टिकोण आवश्यक है जो मिथ को उसके सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करता है।

□ □

मिथ की समग्र तात्विक दृष्टि | ६

१ व्याख्या-पद्धतियो का महत्व और मिथक की गतिशीलता—

मिथ की विभिन्न व्याख्याओ के प्रकाश म एक बात जो स्पष्ट उभर कर सामने आती है वह यह है कि मिथ का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक एव अर्थगर्भित है, तभी विभिन्न ज्ञान-क्षेत्रो के अध्येताओ न अपने अनुशासन की प्रवृत्ति एव स्वरूप के अनुसार मिथ को समझने का प्रयत्न किया है जिसन मिथ के अर्थ का, उसके व्यापक सन्दभ का तथा उसकी 'बोध शक्ति' का ही रेखाकित किया है। इन समस्त व्याख्याओ के अनुशीलन से मेरे समक्ष यह बात स्वय स्पष्ट होती है कि हरेक व्याख्या-पद्धति मे अपने गुण एव दोष भी है और साथ ही, एक ऐसी 'दृष्टि' देन की क्षमता भी ह जो मिथ को समझन का एक 'कोण' है—एक 'नजरिया' है। परन्तु इसके साथ यह भी सत्य है कि विश्व म कोई भी वस्तु या अवधारणा अपने म पूण नही है और यही बात प्रत्येक व्याख्या-पद्धति के लिए भी सत्य है। अत मैं यह दावा नही कर सकता (और करना भी नही चाहिए) कि जिस तात्विक अथवा समग्र 'दृष्टि' का म प्रस्तुत करन जा रहा हूँ, वह भी सभी दृष्टियो से 'पूण' होगी, पर इतना अवश्य है कि वह 'मिथ' के अर्थ और सन्दभ को अनेक आयामो विस्तार देन म सक्षम होगा। इस व्याख्या-पद्धति म किसी भी प्रकार का पूवाग्रह नही है क्योकि अक्सर यह देखा गया है कि किसी सैद्धान्तिक पूर्वाग्रह क कारण हम सत्य और यथार्थ को 'विकृत' कर देत हैं अथवा उसके एक पक्ष को ही उजागर कर पाते हैं। यहाँ पर मेरा यह आशय कदापि नही है कि मैं उपयुक्त व्याख्या-पद्धतियो का नकार रहा हूँ अथवा उनके महत्व को अस्वीकार कर रहा हूँ, कम स कम एक समग्र तात्विक दृष्टि से ऐसा सम्भव भी नही है। यदि गहराई से देखा जाए तो विश्लेषण और विवेचन की सार्थकता उसके सश्लेषण म है जो अन्तत एक तात्विक-समग्र दृष्टि का विकसित करती है। उदाहरणस्वरूप मनोवैज्ञानिक एव समाजशास्त्रीय व्याख्याओ म मिथ सृजन को अचेतन और सामाजिक सगठन स केवल जोडकर, सश्लेषण की प्रक्रिया को एक सीमित क्षेत्र म ही आबद्ध कर दिया है और मिथ के अर्थ को एक आयामिक बना दिया है। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि मिथ के अर्थ-सन्दभ अनेक हो सकते ह

और तथाकथित समग्र-दृष्टि इन अनेक अर्थ-सन्दर्भों को अपने अन्दर समेटने में समर्थ है। मिथ के ये अनेक अर्थ-सन्दर्भ मिथ को एक व्यापक सन्दर्भ ही नहीं देते हैं, पर मिथ की विश्वजनीनता और उसकी लोचशक्ति के परिचायक हैं। मिथ की यह गतिशीलता जो लोचशक्ति और विश्वजनीनता की परिचायक है, मिथ के सांस्कृतिक स्वरूप का उसके तात्विक रूप को प्रगट करती है। उसी आधार पर मिथिक चेतना का सांस्कृतिक-प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग माना जा सकता है।[1] मिथ और संस्कृति का एक विकासात्मक समानान्तर सम्बन्ध है क्योंकि सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विकास क्रम में मिथ का नित्य नया सृजन होता है और पारस्परिक मिथकों की पुनर्विवेचना और पुनर्व्याख्या। सत्य में, यह क्रम एक अटूट क्रम है जो एक द्वन्द्वात्मक स्थिति की ओर संकेत करता है। मिथ के अनेक अर्थ-सन्दर्भ भी इसी द्वन्द्वात्मक अवस्था की ओर संकेत करते हैं और मिथ के स्वरूप को एक गतिशीलता प्रदान करते हैं। मिथ की यह द्वन्द्वात्मक स्थिति उस समय और भी स्पष्ट हो जाती है जब एक मिथ के अनेक रूपान्तरण विभिन्न जातियों और संस्कृतियों में प्राप्त होते हैं और उनके कुछ समान अभिप्रायों और असमान तत्वों की तुलना से उस मिथ विशेष का एक व्यापक स्वरूप ही नहीं प्राप्त होता है, पर मेरे विचार से, मिथ की द्वन्द्वात्मक गतिशीलता का सुन्दर एवं सारगर्भित स्वरूप प्राप्त होता है। मिथ की समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक और भाषिक व्याख्याओं ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में मिथ की इस गतिशीलता को एक तात्विक-सन्दर्भ प्रदान किया है। राम, कृष्ण, ईशु और नानक के मिथकों में यह तथ्य प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूपों में यथावत् देखा जा सकता है। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह गतिशीलता हरेक मिथ में समान रूप से प्राप्त नहीं होती है वरन् उन्हीं मिथकों में प्राप्त होती है जो देश और काल का अतिक्रमण करने में समर्थ हैं और जिनमें लोचशक्ति और विश्वजनीनता का अंश अपेक्षाकृत अधिक है।

२ तात्विक दृष्टि का अर्थ

अतः मिथ की तात्विक व्याख्या का समष्टि 'दृष्टि' है जो मिथ के अनेक

---

1 प्रथम अध्याय में इस विचार का प्रतिपादन किया जा चुका है, यहाँ केवल प्रसंगवश उठाया गया है।

अर्थ-स्तरों को प्रगट करती हैं। यदि गहराई से देखा जाए तो यह कार्य एक दार्शनिक का कार्य है जो सत्य और यथार्थ को एक समग्रता में देखने का प्रयत्न करता है, खण्ड या अंश उसके लिए उसी सीमा तक महत्वपूर्ण है जिस सीमा तक वह समग्र तात्विक दृष्टि में सहायता प्रदान कर सके, अथवा उसका 'पूरक' बनकर आये। इस दृष्टि से, जिन व्याख्याओं का मैंने अभी तक विवेचन किया है, उनमें अवश्य कुछ ऐसे 'तत्व' हैं जो तात्विक व्याख्या में सहायक होते हैं अथवा हो सकते हैं। इस तथ्य की छानबीन के दौरान इन व्याख्या-पद्धतियों की सीमाएँ तथा न्यूनताएँ भी दृष्टिगोचर होंगी। अतः तात्विक व्याख्या को सही परिप्रेक्ष्य देने के लिए यह मूल्यांकन आवश्यक है जो मेरे उपर्युक्त मत और विचारणा को कदाचित 'कुछ' सार्थकता दे सके।

रूपकात्मक व्याख्या का क्षेत्र काफी व्यापक है क्योंकि अनेक मिथकों का अर्थ रूपकात्मक होता है, विशेषकर उन मिथकों का जिनमें 'इतिवृत्त' या 'कथा' का अंश अधिक होता है। यही कारण है कि प्राचीन मिथकों में 'रूपक तत्व' की प्रधानता होती है जो किसी 'सत्य' की कथात्मक परिणति होती है। यह सत्य प्राकृतिक घटनाओं का भी हो सकता है, मानसिक प्रक्रियाओं और बाह्य यथार्थ का भी हो सकता है। यही नहीं, यह रूपकात्मक तत्व ब्रह्माण्डीय 'सत्य' को भी कथात्मक रूप में प्रस्तुत करता है जो अनेक जातियों के सृष्टि-मिथकों में देखा जा सकता है।[1] दूसरी ओर, रूपकात्मक व्याख्या की एक सीमा भी है, वह उन मिथकों की (जिनमें आधुनिक मिथक अधिक हैं) व्याख्या करने में सक्षम नहीं है जिनमें 'इतिवृत्त' का अंश बहुत कम है, और यदि, वह है भी (जो मिथ की अवधारणा का एक आवश्यक तत्व है) तो 'फिक्शन' या प्रभामण्डल के रूप में। यह 'प्रभामण्डल' इतिवृत्त का एक अत्यन्त केन्द्रीकृत रूप है जो किसी अवधारणा या व्यक्ति के चारों ओर एकत्र होता जाता है। यदि गहराई से देखा जाए तो मिथक सृजन की यह प्रक्रिया ही है जो काल के दीर्घ आयाम में घटित होती है। ऐसे मिथक अधिकतर आधुनिक मिथ हैं जो संकल्पनाओं और अवधारणाओं के रूप हैं। इनकी व्याख्या एक तात्विक-दृष्टि की अपेक्षा रखती है।

इस रूपकात्मक व्याख्या का एक पक्ष यह भी है कि सूर्य और चन्द्रमा का मिथ सृजन का केन्द्र माना गया जो व्यापक दृष्टि से मानव बुद्धि का ग्रहण

---

१ सृष्टि-मिथकों की व्याख्या आगे यथा स्थान की जाएगी।

हैं क्योंकि संकल्पनाओं और विचारों के क्रमिक विकास में मिथिक चेतना का अपना योगदान रहा है। आदिम मिथकों ने जहा एक ओर प्रागतार्किक विचारों का सूत्रपात किया, वहीं दूसरी ओर, मानव के संवेदनात्मक एवं वैचारिक इतिहास को गति प्रदान की। इस मानसिक विकास की दृष्टि से मिथिक चेतना एक सृजन-प्रक्रिया का परिचय देती है और यदि गहराई से देखा जाए तो प्रतीक, मिथ, यातु तथा धर्म के क्रमिक विकास में मन की इसी सृजन-प्रक्रिया का परिचय प्राप्त होता है।

मिथ की मनोवैज्ञानिक व्याख्या मानसिक जगत की गहनता और विशेषकर, अचेतन को केन्द्र मानकर मिथ की एक ऐसी व्याख्या प्रस्तुत करती है जो सामूहिक अचेतन पर विशेष बल देती है। सामूहिक अचेतन की अभिव्यक्तियों को लेकर युग ने जिस तत्व की ओर विशेष बल दिया है, वह है उसका 'वस्तुगत' होना क्योंकि यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान है और उसकी अभिव्यक्ति के लिए हम उत्तरदायी नहीं हैं। इस प्रकार, वह सामूहिक अचेतन को 'बाह्य जगत' या यथार्थ से जोड़ना चाहता है और इस प्रकार वह मिथ को व्यक्ति और समूह (समाज) दोनों से सम्बन्धित करता है। यहाँ पर यह बात भी स्पष्ट होती है कि मिथ की व्यापकता सामूहिक अचेतन के द्वारा स्पष्ट होती है जो भारतीय विचारधारा में 'संस्कार' का प्रतिरूप ज्ञात होती है। इन आतरिक 'संस्कारों' का व्यक्ति और समूह (यहा तक कि संस्कृति और जाति) के जीवन में अभिन्न स्थान है। यही कारण है कि मिथ का एक गहरा सम्बन्ध इन संस्कारों से है जिससे व्यक्ति और समूह का चेतन जीवन प्रभावित ही नहीं होता है, पर [illegible] प्रकार से वह अनेक स्तरों पर रूपान्तरित भी होता है। इस बिन्दु पर एक बात जो युग के मॉडल में नहीं प्राप्त होती है, वह है मन की चेतन-क्रिया का एक औचित्यपूर्ण स्थान क्योंकि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि सामूहिक अचेतन पर अत्यधिक जोर देने के कारण युग चेतन-क्रिया को पृष्ठभूमि में डाल देते हैं जबकि मिथ सृजन में चेतन-प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि वह व्यक्ति और समूह की 'सजगता' (अवेयरनेस) की ओर संकेत करती है। फिर, दूसरी बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि किसी भी प्रकार की 'मॉडल संरचना' में एक परिसीमन होता है जो हर वस्तु को उस मॉडल में फिट करना चाहता है। युग की 'मॉडल संरचना' में सामूहिक अचेतन और 'आदिरूपों' का विशेष स्थान है, क्योंकि इन्हीं 'प्रत्ययों' के द्वारा

यह मिथ की व्याख्या प्रस्तुत करता है। इस मॉडल में 'आदिरूपा' का सम्बन्ध 'आदिम' से जोड़ा गया है, पर सम्पूर्ण सांस्कृतिक प्रक्रिया का ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि आदिरूपा का स्वरूप केवल 'आदिम' ही नहीं है, पर उनका अस्तित्व आज भी है, अधिक से अधिक उनके प्रक्षेपण में अन्तर हो गया है। प्रक्षेपण में यह अन्तर युग के अनुसार, आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि है जो आदिरूपा के प्रक्षेपण को रोकती है। यहाँ पर 'रोकने' का प्रश्न नहीं है, क्योंकि आज भी ये आदिरूप (जैसे छाया, अचेतन आदि) किसी न किसी रूप में मानव को प्रभावित करते हैं, चाहे उनका स्वरूप नकारात्मक हो या सकारात्मक। इन 'आदिरूपों' का एक गहरा सम्बन्ध मिथकों से है क्योंकि इनके द्वारा हम अनेक मिथकों को 'समझ' सकते हैं, उनकी व्याख्या कर सकते हैं। यहाँ पर फिर वही प्रश्न उठता है कि क्या सभी मिथकों को (मुख्य रूप से सृष्टि मिथक, हीरो-मिथक, सूर्य एवं चन्द्र मिथक तथा आधुनिक मिथक) आदिरूपों के द्वारा विवेचित किया जा सकता है जहाँ एक चेतन एवं उपचेतन अवधारणाओं एवं प्रकल्पनाओं का रूप प्राप्त होता हो? ऐसी दशा में मिथकों की व्याख्या के लिए एक समग्र तात्विक दृष्टि की ही अपेक्षा है जो पूर्वाग्रहों से जहाँ तक हो सके, मुक्त हो।

मिथ की वस्तुगत व्याख्या का सूत्रपात समाजशास्त्रियों और नृतत्वशास्त्रियों ने वैज्ञानिक पद्धति का सहारा लेकर आरम्भ किया जिसने सामाजिक यथार्थ के स्वरूप पर बल दिया और साथ ही, मिथ और धर्म को सामाजिक संगठनों का एक प्रमुख आधार स्वीकार किया। इस व्याख्या-पद्धति ने मिथ सृजन को आदिम जनजातियों और कबीलों से सम्बन्धित किया, और इनका अध्ययन कुछ उसी प्रकार से किया गया जैसे जीवाश्मों, (फासिल्स) का और पुरातत्व में प्राप्त उत्खनित सामग्री का। इस पद्धति ने मिथ को अधिकतर आदिम मानसिकता से जोड़ने का प्रयत्न किया और उसे वहीं तक एक प्रकार से 'सीमित' कर दिया। यह सच है कि इस प्रकार के अध्ययन ने अनेक मिथकों के आदि स्रोत और अनेक समान तत्वों की ओर संकेत किया जिनका अस्तित्व आज भी वर्तमान है। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि मिथ का सम्बन्ध आदिम जगत से है, पर मिथ की अपनी गत्यात्मकता है, वह केवल 'आदिम' ही नहीं है। अनेक नवीन मिथकों का सृजन होता है सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में। मिथ का सम्बन्ध केवल प्रकृति और समाज से ही नहीं है पर उसका सम्बन्ध 'मानव' से है—उसकी सम्पूर्ण सांस्कृतिक अर्थवत्ता से है। संस्कृति केवल समाज एवं प्रकृति ही नहीं है,

वह मानव नामधारी प्राणी की आंतरिक और बाह्य यात्रा है। मिथ के इस सांस्कृतिक पक्ष को ध्यान में रखकर यातु और अनुष्ठानों का भी अपना एक महत्व है जहाँ तक मिथक के बाह्य अभिव्यक्तिकरण का प्रश्न है। इन अनुष्ठानों, उत्सवों और पर्वों के द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मिथक ही प्रतीकीकृत होते हैं। इस प्रकार मिथ का कोई न कोई तात्विक अर्थ (वह सामाजिक, ब्रह्मांडीय मानसिक या जातीय आदि भी हो सकता है) ही इन अनुष्ठानों के द्वारा प्रकट होता है। यदि तात्विक दृष्टि से कहा जाए तो यातु, अनुष्ठान और यहाँ तक कि 'टोटम' की पृष्ठभूमि में किसी न किसी भाव या विचार-प्रक्रिया का रूप मिलता है जो संस्कृति का एक आवश्यक तत्व है। मिथकीय भावभूमि में इस तत्व का अपना योगदान रहा है और समाज एवं मानव-शास्त्रीय व्याख्या ने मिथ के इस पक्ष को एक तार्किक आधार प्रदान किया है जो एक प्रकार से मिथ की तात्विक-व्याख्या का एक आधार तत्व बन सकता है। उस तात्विक दृष्टि में लेवी स्त्रास की यह मान्यता भी स्वीकार योग्य है कि मिथ 'अर्थों' के संप्रेषण की एक व्यवस्था है या दूसरे शब्दों में एक ऐसी उप व्यवस्था है जिसके अर्थ के अनेक स्तर हो सकते हैं। 'अर्थ' के इन अनेक स्तरों में केवल सामाजिक संगठन प्रदान करने वाला अर्थ ही समाहित नहीं है जैसा कि सामाजिक व्याख्याकार मानते हैं, पर मिथ के अनेक अर्थ स्तर भी हो सकते हैं।

३ अनेक अर्थ स्तर

समग्र तात्विक दृष्टि एक प्रकार से जैविक दृष्टि है जो मिथ के व्यापक अर्थ-संदर्भ को—उसके अर्थ-स्तरों का उद्घाटन करती है और इस प्रकार, मिथ की व्याख्या को अनेक आयामी बनाती है। भारतीय विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में यह माना गया है कि मिथ किसी न किसी तात्विक अर्थ-संदर्भ का बाह्य प्रकटीकरण है जिसमें इतिवृत्त या 'फिक्शन' (प्रभामण्डल) का तत्व न्यूनाधिक रूप में प्राप्त होता है। इस बिन्दु पर आकर यह भी कहा जा सकता है कि एक दार्शनिक (जो समग्र दृष्टि युक्त चिंतक है) का यह कार्य है कि वह मिथ के अर्थ-स्तरों का, उसके तात्विक संदर्भ का उद्घाटन करे। यहाँ पर एक अन्य तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है कि मिथ की सार्थक अर्थवत्ता के लिए ज्ञान की अन्तर-अनुशासनीय प्रणाली को स्वीकार करना भी आवश्यक है क्योंकि जब अर्थ-स्तरों की बात करते हैं, तब अन्तर-अनुशासनीय 'एप्राच' के द्वारा ही

हम मिथ के तात्विक सन्दर्भ को उद्घाटित एवं विवेचित कर सकते हैं। यही कारण है कि एक ही मिथ का विवेचन अन्तर-अनुशासनीय 'संवाद' के द्वारा अनेक अर्थ सन्दर्भों को (जैसे सामाजिक, राजनीतिक, ब्रह्मांडीय, मानसिक) प्रकट करता है और साथ ही मिथ की मूल्यवत्ता का—या उसके सौन्दर्यात्मक 'मूल्य' का एक भावात्मक पीठिका प्रदान करता है। आदिम से लेकर आधुनिक मिथकों तक की विकासयात्रा इस तथ्य को प्रगट करती है कि प्रागतार्किक संवेदन से तार्किक संवेदन तक सम्बन्ध सूत्र है जो मानव की वैचारिक (और संवेदनात्मक) विकास यात्रा का एक दस्तावेज है। मैंने अन्तर अनुशासनीय 'संवाद' की जो बात कही है, उनमें एक तत्व की ओर संकेत करना आवश्यक है कि उपयुक्त व्याख्या-पद्धतियों के अतिरिक्त मिथकों की वैज्ञानिक-व्याख्या भी हो सकती है जिसकी ओर लोगों का कम ही ध्यान गया है। यह सही है कि सभी मिथकों का इस 'पद्धति' के द्वारा भी व्याख्यायित नहीं किया जा सकता है, पर अनेक मिथकों के प्रसंगों को वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं के प्रकाश में एक नया सन्दर्भ दिया जा सकता है जो तात्विक दृष्टि से भी मिथक को समझने में सहायता दे सकता है।

मिथ के सांस्कृतिक महत्व को एक अन्य दृष्टि से विवेचित किया जा सकता है। सामान्यतः यह धारणा बन गई है कि मिथ फिक्शन है, काल्पनिक और अवास्तविक है। मिथ का यह स्वरूप सामान्य रूप से मिथ के व्यापक सन्दर्भ और अर्थ को सीमित ही नहीं करता है, पर उसे एकांगी भी बना देता है। प्राचीन और आधुनिक मिथकों के सन्दर्भ में इतना सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि मिथ-सृजन में कोई विचार या अवधारणा की पृष्ठभूमि रहती है जो अपने चारों ओर एक प्रकार का इतिवृत्त या प्रभामंडल (फिक्शन) 'काल' के दीर्घ आयाम में एकत्र करता है क्योंकि इसके बगैर मिथक का अस्तित्व सम्भव नहीं है। यही कारण है कि मिथ और यथार्थ का एक गहरा सम्बन्ध है, कभी मिथ यथार्थ हो जाता है और कभी यथार्थ मिथ बन जाता है। मिथ और यथार्थ का यह द्वन्द्व सांस्कृतिक प्रक्रिया का एक अभिन्न अङ्ग है। यही कारण है किसी भी जाति के लिये मिथ एक जीवित यथार्थ या जीवित स्वप्न के समान होते हैं जो उनके मनस् लोक को 'एकसूत्रता' प्रदान करते हैं। दूसरे शब्दों में मिथिक चेतना में स्वप्न और यथार्थ का, विचार और कल्पना का, वास्तविकता और फैन्टेसी का तथा शिव और अशिव का एक ऐसा 'घोल' प्राप्त होता है जिसे कदाचित् अलग करके देखा नहीं जा सकता है। यही कारण है कि मिथ का

अर्थ प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष है वह अनेक प्रकार के बिम्बो और प्रतीको से से आच्छादित रहता है, अत मिथ के तात्विक अर्थ को स्पष्ट करने के लिये इन रूपाकारो बिम्बो और प्रतीको को सही परिप्रेक्ष्य म विवेचित करना आवश्यक है। यह कार्य दार्शनिक एव तत्वज्ञता का है कि वह इस परोक्ष अर्थ का उद्-घाटित करे, और यह परोक्ष अर्थ या व्यापक अर्थ एक समग्र एव समष्टि-दृष्टि के द्वारा ही सम्भव है।



खण्ड—२

७ | मिथक के कुछ महत्वपूर्ण प्रकार

प्रवेश

मिथक की विभिन्न व्याख्याओं से यह बात स्पष्ट होती है कि मिथक-सृजन का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और साथ ही, मिथक के विभिन्न अर्थ सदर्भ या स्तर होते हैं। मिथ के इस व्यापक परिप्रेक्ष्य को उसी समय उचित प्रकार से हृदयगम किया जा सकता है जब हम कुछ महत्वपूर्ण मिथ प्रकारों का विवेचन करें क्योंकि कदाचित् यह सम्भव नही हो सकेगा कि सभी प्रकार के मिथकों का पूरा विवेचन किया जा सके। अत मिथ की एक समग्र और तात्विक दृष्टि के लिये यह आवश्यक है कि कुछ मिथकों का इस दृष्टि से लिया जाय जिनकी मानव-इतिहास में एक सार्वभौम सत्ता है और जिनका कोई न कोई रूप या रूपांतरण विभिन्न सभ्यताओं और सास्कृतियों में प्राप्त होता है। इससे मिथ की सार्वकालिक एव सार्वदेशिक महत्ता का अनुभव किया जा सकता है और साथ ही, मिथ के सास्कृतिक महत्व को रेखांकित किया जा सकता है। इस अध्ययन एव विवेचन से मानव 'परिवेश' का वह रूप स्पष्ट होगा जो दृश्य और अदृश्य लोकों को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न करता है और साथ ही, मानव के क्रमिक वैचारिक विकास को रेखांकित करता है। इस दृष्टि से कुछ महत्वपूर्ण मिथक-प्रकारों का विवेचन अपेक्षित है। ये मुख्य प्रकार हैं—

१ प्रकृति मिथक
२ सृष्टि मिथक
३ नायक या हीरो मिथक
४ आधुनिक मिथक

प्रकृति मिथक

१ प्रकृति-सदर्भ

पूर्व विवेचन से यह स्पष्ट हो चुका है कि मिथक की संरचना में 'प्रकृति' एक नाटकीय रूप में आती है क्योंकि मानव ने सबसे पहले 'प्रकृति' से प्रति-

क्रियात्मक सम्बन्ध स्थापित किया। इसी सम्बन्ध के फलस्वरूप उसने प्राकृतिक वस्तुओं और घटनाओं के प्रति एक जिज्ञासाजनित मनोभाव का परिचय दिया। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रकृति के अन्तर्गत जैव और अजैव जगत् दोनों आ जाते हैं और साथ ही वे घटनाएँ और प्रक्रियाएँ जिन्हें हम 'प्राकृतिक घटनाएँ' (जैसे मेघ, वर्षा, अग्नि आदि) कहते हैं, उनका समावेश भी 'प्रकृति' के अन्तर्गत होता है। इस दृष्टि से प्राकृतिक वस्तुओं और घटनाओं से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण मिथकों का विवेचन आवश्यक है जिनका स्रोत 'आदिम' है फिर भी जो विकास की दृष्टि से जातीय संस्कृति की एक प्रकार से अभिन्न अंग है।

२ अग्नि-मिथक

मानव का अग्नि से प्रथम साक्षात्कार एक ऐसा अनुभव था जिसने सभ्यता और संस्कृति के विकास में एक प्रमुख तत्व के रूप में अपना योगदान दिया। अग्नि एक भौतिक प्रक्रिया का फल है। आदिम मानव उसे एक प्राकृतिक घटना के रूप में नहीं देख सका और उसे एक आधिभौतिक शक्ति के रूप में, जिसमें भय और जिज्ञासा का समन्वित मनोभाव था, स्वीकार किया। आदिम अवस्था में भय या अन्य मनोविकार जो सुप्तावस्था में थे, वे क्रमशः चेतना के स्तर को आन्दोलित करने लगे और इस प्रकार, अनेक अभिव्यक्ति-प्रकारों का जन्म हुआ। अतः जब अग्नि का यह शक्तिरूप उपचेतना के पाश से छूट कर चेतना के स्तर पर आया तब उसने अग्नि तथा प्राकृतिक घटनाओं के प्रति एक प्रतिक्रियात्मक आरम्भिक विचार-प्रक्रिया का परिचय दिया जो भावात्मक एवं उत्तेजनात्मक अधिक था।[1] इस दशा में आदिम मानव के मस्तिष्क में यह विश्वास घर कर गया कि अग्नि में एक सृजनात्मक शक्ति है। फ्रेजर ने इस विश्वास का एक कारण बताया है। उसके अनुसार अनेक आदिम जातियों में अग्नि की उत्पत्ति के लिए 'अग्नि-ड्रिल' की प्रथा प्रचलित थी। इस अनुष्ठान ने आदिम मानव को यह विश्वास प्रदान किया कि अग्नि की उत्पत्ति एक प्रकार से अग्नि-लकड़ियों के संघर्षण का फल है और इसी विचारधारा के फलस्वरूप उन्होंने यह तर्क उपस्थित किया कि जिस प्रकार 'अग्नि-लकड़ियों के घर्षण से अग्नि जैसी शक्ति का जन्म होता है, उसी प्रकार अग्नि की कृपा से मनुष्य

---

१ द माइण्ड आफ दी प्रिमिटिव मैन, फ्रेंज वास, पृ० २५

सतान प्राप्त कर सकता है।[1] अत दो अग्नि-लकडिया को उन्होंने स्त्री और पुरुष रूप मे ग्रहण किया और लकडिया के सघर्षण को यौन क्रिया का सूचक माना। हिन्दू मिथकों में इन दोनों लकडियों का उर्वशी और पुरूरवा की सज्ञा दी गयी। आगे चलकर अग्नि की इस सृजन-शक्ति के अनेक उदाहरण हम धर्म और उससे सम्बन्धित अनुष्ठानो म मिलते हैं। अग्नि का यह मिथकीय रूप (जो अग्नि के प्रतीकत्व पर निर्भर है) उस समय और भी स्पष्ट होता है जब अग्नि को एक दिव्य 'पति' के रूप म और उसकी पत्नी को एक मानवीय अप्सरा के रूप म देखा गया। उर्वशी और पुरूरवा म यह क्रम विपरीत प्राप्त है जहाँ उर्वशी एक दैवी अप्सरा है, पर रोम के आरम्भिक सम्राटगण इन्हीं अप्सराओं और 'दिव्य अग्नि' से उत्पन्न माने गए।

अनेक अफ्रीकी, एशियाई तथा योरुपीय आदिम जातियों म अग्नि-त्योहारों के मनाने की प्रथा थी। इस अनुष्ठान को करने का एक उद्देश्य यह भी था कि दम्पति स्वस्थ सतान लाभ कर सके। इसके अतिरिक्त इन पर्वों के मनाने का एक अन्य कारण भी था, और वह यह कि इनके द्वारा उन राक्षस-राक्षसिनियों, भूतों और प्रेतों का वश म किया जाता था अथवा उन्हें नष्ट किया जाता था जो फसलों और सन्तानों की उत्पत्ति म बाधाएँ उपस्थित करते थे।[2] इस विपत्ति से बचने के लिये अनेक प्राणियों को अग्नि मे बलि किया जाता था। इससे यह समझा जाता था कि जीवधारी के रूप मे उस भूतात्मा अथवा राक्षस को नष्ट किया जाता है। इस प्रकार अग्नि की विध्वसक शक्ति का रूप प्राप्त होता है। इन अग्नि-त्योहारों के द्वारा सूर्य की प्रकाश शक्ति का सृजनात्मक एव विध्वसात्मक कार्यों के लिये उद्बोधित किया जाता था। हिन्दू धर्म म अग्नि को 'देवता' के रूप में माना गया और ऋग्वेद का आरम्भ ही अग्नि ऋचाओं से होता है जो अग्नि की सृजन-शक्ति एव पवित्र शक्ति को सक्षम रखती है। हिन्दू-विवाह म अग्नि की परिक्रमा का आशय यह है कि पति-पत्नी मे सृजन-शक्ति का विकास हो (सतानोत्पत्ति) और विकारों का ह्रास हो। यदि दूसरे शब्दों मे कहा जाय तो यह अग्नि का मिथुनपरक रूप है। दूसरी ओर, वैदिक कर्मकाण्डो मे अग्नि म 'हवि' देने की प्रथा है, वह अग्नि और अन्न के परस्पर महत्व का परिचायक है। वैज्ञानिक दृष्टि से अन्न की उत्पत्ति (यहाँ

---

१ दि गोल्डेन बो, स्टडी इन मैजिक एण्ड रेलीजन, फ्रेजर भाग १, पुस्तक २ पृ० १७०

२. गोल्डेन बो, बाल्डर दि ब्यूटिफुल, फ्रेजर, भाग ७, पुस्तक २, पृ० ११३

इण्डियन, आस्ट्रेलियन और अन्य आदिम जातियों में प्राप्त होती है। इन आदिम जातियों में वृक्ष को अनेक प्रकार की भेंट दी जाती थी जिससे यह समझा जाता था कि प्राणधारियों की तरह वृक्ष आदि वनस्पतियों में भी जीवन-तत्व (चेतना) का अस्तित्व है। अतः इन लोगों ने वृक्ष को चेतना से युक्त समझ उनका मानवीकरण अथवा जीवीकरण करना आरम्भ किया। इस प्रकार वनस्पति जगत को चेतनायुक्त (सप्राण) करने की प्रक्रिया और साथ ही, वृक्षों के प्रति 'परम भावना' के विकास ने वृक्षात्मा से वृक्षदेवता की परिकल्पना का विकसित किया।[1] यह विकास क्रमिक रूप में हुआ क्योंकि जैसे-जैसे वृक्षात्मा प्रत्यक्ष वृक्ष से अलग होती गयी, वैसे-वैसे उसने अपना 'रूप' बनाना आरम्भ किया और अन्ततः वृक्ष देवता के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। इस प्रकार, वृक्ष के प्रति एक आश्चर्य एवं रहस्य भावना का विकास हुआ। उन्होंने वृक्ष के उगने में मानवीय प्रजनन-क्रिया से एक समानता की कल्पना की जिससे क्रमशः वृक्ष को उर्वरता का प्रतीक बनाया। इस भावना ने आदिम मानव को यह विश्वास प्रदान किया कि स्वस्थ सन्तान प्राप्ति में वृक्षों का योगदान होता है। इसी से आगे वृक्षों और पौधों को मिथुनपरक अर्थ प्रदान किया गया। तुलसी वृक्ष को एक देवी के रूप में कल्पित किया गया और प्रतिवर्ष उसका विवाह श्रीकृष्ण से होने की घटना इस बात की ओर संकेत करती है कि वृक्ष का महत्व यौन-प्रतीक के रूप में भी मान्य था। हमारे यहाँ प्रियंगु, अशोक, श्रीफल तथा तुलसी आदि ऐसे ही वृक्ष पौधे हैं जिन्हें उर्वरता का प्रतीक माना गया। यूरोपीय मिथकों में 'मैड्रा' वृक्ष को उर्वरता का प्रतिरूप माना गया जो स्त्रियों और पशुओं को प्रजनन शक्ति प्रदान करता है। इस तथ्य का संस्कृत साहित्य में वाचक शब्द 'दोहद' है जो मूलतः मिथुनपरक है।[2] यहाँ तक कि अनेक कवि-परिपाटियों की धारणा में यह मिथुनपरक अर्थ प्राप्त होता है। यह माना जाता है कि अशोक सुन्दरियों के पदाघात से मुकुलित हो जाता है। यह सही है कि अनेक परिपाटियाँ (कवि समय) कल्पित हैं और उनका यथार्थ से सम्बन्ध नहीं है, पर कवि कल्पना में वे 'सत्य' ही हैं। मिथक में यह फिक्शन और यथार्थ का अन्योन्य सम्बन्ध रहता है जिसकी ओर पूर्व ही संकेत (समष्टि तात्विक दृष्टि के अन्तर्गत) किया जा चुका है। फिनलैण्ड, रूस और फ्रांस आदि देशों में डियाना नामक एक वृक्ष देवी का संकेत प्राप्त होता है जिसे उर्वरा-शक्ति का रूप माना

---

१ गोल्डन बो, फ्रेजर, भाग १, पृ० ४४-४८

२ हिन्दी साहित्य का आदिकाल, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २२६

गया और उसे अपनी इस शक्ति के लिए एक नर-साथी की आवश्यकता पड़ी जिसे 'निवीयस' की संज्ञा प्रदान की गयी।[1] यह प्रवृत्ति अनेक जातियों में समान रूप से प्राप्त होती है जो यह तथ्य प्रकट करती है कि मानसिक विकास की समान अवस्थाएँ भिन्न-भिन्न जातियों में समान मिथकों का सृजन करती हैं।

४ ऋतु सन्दर्भ

इसी सन्दर्भ में ऋतुओं के परिवर्तन के पीछे आदिम मानव का यह विश्वास था कि इनके पीछे यातुक अनुष्ठानों का समाधान है क्योंकि उनकी यह मान्यता थी कि ऋतु-परिवर्तन के यातुक अनुष्ठानों का फल है। इन अनुष्ठानों के द्वारा ऋतुओं को समझा जा सकता है। यही कारण है कि आदिम जातियों में 'ओक' वृक्ष का वर्षा और सौदामिनी से सम्बन्धित किया गया और इस प्रकार ज्यूपीटर और इन्द्र की धारणा का स्वरूप मुखर हुआ। इसी प्रकार 'जियस' का स्थान पर्वतों पर माना गया जहाँ वृक्ष उत्पन्न होते हैं और मेघ घनीभूत होते हैं।[2]

५ टोटमी मिथ

प्रकृति का एक विशाल क्षेत्र 'टोटम मिथों' का क्षेत्र माना जा सकता है जिसमें जैव जगत और पशु जगत के प्रति एक पवित्रता का मनोभाव रहता है और जिनका महत्व सामूहिक भी होता है।[3] इस दृष्टि से 'टोटम' के कुछ महत्वपूर्ण उदाहरणों के द्वारा हम उनके मिथकीय रूप को उजागर कर सकेंगे और साथ ही, उनके सांस्कृतिक एवं सामाजिक महत्व को रेखांकित कर सकेंगे।

सबसे महत्वपूर्ण गोत्र (clan) टोटम हैं जो पवित्रता के साथ, समूह के व्यक्तियों को संगठित करता है। गोत्र का सम्बन्ध टोटम के अलौकिक और गूढ़ अर्थ से होता है और साथ ही टोटम उस समूह की रक्षा करता है। इस प्रकार, समूह का एक नैतिक दायित्व होता है 'टोटम' के प्रति।

---

१ गोल्डन बो, भाग १, पृ० १४२
२ गोल्डन बो, भाग १, पृ० ३७३
३ टोटम का सैद्धान्तिक विवेचन पीछे किया जा चुका है, देखें समाजशास्त्रीय एवं मानवशास्त्रीय व्याख्या।

गोत्र-टोटम के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। अनेक जातियाँ अपने को किसी पशु, पक्षी अथवा प्राकृतिक वस्तु के नाम से पुकारती थी। अपने देश मे नीम या पिप्पल (पीपल) कही जाने वाली जातियो का सम्बन्ध नीम या पीपल वृक्ष का ही पर्याय है जो मूलत एक 'गोत्र' का नाम ही हो गया। इसी प्रकार नाग जाति का सम्बन्ध नाग या सर्प से है। अनेक मिथको म गरुड, वानर, नाग, हस और ऋक्ष आदि का नाम आता है (जो क्रिया-कलाप करते हुए दिखाये गये हैं) जो वास्तव मे जातियाँ थी जो अपने 'टोटम' के नाम से पुकारी जाती थी। इस सन्दर्भ म श्री आनन्द कृष्ण अय्यर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जिन्होने दक्षिण भारत की कुछ टोटम जातियो का अध्ययन किया है और उनके नाम का किसी पशु, पक्षी या वृक्ष से जोडा है। उदाहरण-स्वरूप आडू जाति का सम्बन्ध बकरी आडू) से, आन जाति को सम्बन्ध हाथी से, अग्मू जाति का सम्बन्ध वट वृक्ष स तथा अछि जाति का सम्बन्ध गूलर (अछि) से स्थापित किया है।[1] इस प्रकार अनक जातियो का (गोत्र) क्रमश विकास हुआ जो आगे चलकर अपने को 'देवता' से इतना जोड लेती हैं कि वह उस देवता को अपनी जाति का पर्याय ही बना लेती है। नाग, गरुड, मण्डूक, गिद्ध आदि इसी रूप मे जाने गये। इस सन्दर्भ मे एक महत्वपूर्ण तथ्य पुराण और इतिहास मे प्राप्त होता है कि कुछ देवताओ की धारणा मे दो टोटम जातियो का, जो एक दूसरे की टैबू थी, उनका सयोग कराया गया और उनके मध्य एक प्रकार की सद्भावना को जन्म देने का प्रयत्न किया गया। उदाहरणस्वरूप गणेश की धारणा म हाथी और मूषक का सयोग, विष्णु के साथ गरुड का समझौता, काली के साथ सिंह का सम्बन्ध आदि प्राप्त होते हैं जो पुराण कथाओ म अपना योगदान देते हैं। सथालो मे सौ गोत्र ऐसे है जिनका नामकरण पौधो पर और कुछ का नामकरण पशुओ के नाम पर प्राप्त होता है। इसी प्रकार मुडा तथा अफ्रीका की कुछ जनजातियो मे वहिर्विवाही गोत्र हैं जिनका नामकरण किसी फल, फूल, वृक्ष या पशु के नाम पर किया गया है।[2]

टोटम का एक बडा वर्ग उपासना और श्रद्धा के मनोभाव से प्रेरित प्राप्त होता है जो हम आज तक अनेक जातियो और सस्कृतियो मे किसी न किसी

---

१ सस्कृति और समाजशास्त्र (भाग १) डॉ० रागेय राघव, पृ० १०४

२ गोल्डेन बो, फ्रेजर, भाग २, पृ० २४०

८ | सृष्टि मिथक

१ प्रवेश

किसी भी सृष्टि-मिथक का सम्बन्ध 'उत्पत्ति' से है जो मानव चेतना को यह सोचने के लिए विवश करती है कि विश्व और ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कैसे हुई ? इस संसार की रचना का सम्बन्ध भी सृष्टि उत्पत्ति ही वह मॉडल है जो हरेक वस्तु के उद्भव की व्याख्या कर सकती है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि मिथक का पहला पक्ष-सृष्टि मिथक है जिसमें मनस् की मिथकीय प्रक्षेपण सृष्टि शास्त्र या ब्रह्माण्डोत्पत्ति के क्षेत्र में होता है। यह एक प्रकार से अर्द्ध चेतना का प्रक्षेपण है जो अनेक प्रतीकों और बिम्बों के द्वारा सृष्टि के रहस्य और विश्वोत्पत्ति को समझने का एक ऐसा आदि प्रयास था जिसने मानवीय चेतना को ब्रह्माण्ड की गहराइयों में प्रवेश करने का मार्ग प्रशस्त किया।

२ सम्पूर्णता का रूप और प्रतीक सृजन

आरम्भ या सुदूर अतीत में केवल सम्पूर्णता थी। इस 'सम्पूर्णता' का केवल प्रतीकात्मकता के रूप में ही प्रकट या विवेचित किया जा सकता था। इस 'सम्पूर्णता' का स्वरूप ही कुछ इस प्रकार का था उस मिथकीय विवेचन के द्वारा ही व्यक्त किया जा सकता था। आरम्भ का यह विवेचन अपने मूल रूप में 'मिथकीय' ही था जिसको समझने के लिए बाह्य जगत की ओर जाना आवश्यक था क्योंकि उस समय व्यक्ति का मनस और बाह्य जगत मूलतः एक ही थे।[1] यह 'मनस' अपने को संसार या विश्व ही समझता था और अपने 'होने' को विश्व का 'होना' मानता था। अपने ही बिम्बों और प्रतीकों को आकाशीय पिंडों और नक्षत्रों का रूप मानता था।

यहाँ पर यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि सभी धर्मों में 'सृष्टि' का आरम्भ प्रकाश की सृष्टि से होता है जो 'चेतना' का आगमन है और अंधकार (अचेतना) पर प्रकाश या चेतना का उदय। समस्त सृष्टि-मिथकों का यह एक 'मूल तत्व' है जिसके बगैर विश्व और ब्रह्माण्ड की प्रक्रिया का

---

१ ऐन एसे आन मैन, कैसिरर, पृ० २२

कदाचित् समझा नही जा सकता है। इस 'प्रकाश' के आगमन के पूर्व भी 'कुछ' की कल्पना गयी जिसके चारो ओर प्रतीको का समूह प्राप्त होता है। इन प्रतीको का अस्तित्व मानव चेतना से है और साथ ही 'सादृश्य' के आधार पर इनके 'अर्थ' को ग्रहण किया जा सकता है। ऐसा ही एक मूल सम्पूर्ण वाचक प्रतीक है वृत्त।

३ वृत्त या गोलक की धारणा

एक ऐसा मिथकीय प्रतीक है जो सृष्टि-मिथको मे अनेक रूपो और 'नामो' म प्राप्त होता है। वृत्त के ही समकक्ष अर्थ प्रदान करने वाले पर्याय गोलक, अण्डा और पिण्ड है। यही प्लेटो का गोलक (राउड) था जो आरम्भ मे उपस्थित था। अत इस विश्व का आरम्भ एक वृत्त के रूप मे हुआ जिसका न आरम्भ है और न अत। यह अनत, अनादि और सर्वव्यापी है जिसे हिन्दू धर्म म ब्रह्म या शून्य की सज्ञा दी गयी गोलक 'अडाशायी' भी है जिससे समस्त विश्व का उद्भव हुआ है। यह निरपेक्ष और सम्पूर्ण है जिसमे सारे विलोम एव विरोधी तत्व समाहित है। ये विलोमी तत्व जब 'सम्पूर्ण' से बहिर्गामी होते हैं, तब ससार की रचना आरम्भ होती है। चीनी मिथको मे इस गोलक या अण्डे को 'टी इची' सज्ञा दी गयी है जिसमे काला और श्वेत, दिन और रात, आकाश और पृथ्वी तथा नर और नारी आदि का समावेश है। इस वृत्त का अस्तित्व जिसम एकत्व और अनेकत्व की शक्तिया विद्यमान हैं, अनेक पुरागाथाओ म प्राप्त होती है जैसे मिश्र, ग्रीक, भारत और न्यूजीलैंड आदि देशो मे।[1] यही विलोमो का सघात है जिसम नर और नारी का एक सयुक्त आकार है जो आदि सृजन तत्व है जिसे बृहद् उपनिषद मे 'पुरुष' की सज्ञा दी गयी जो आरम्भ म 'अकेला' था और उसी से पति (पुरुष) और पत्नी (नारी) का निर्माण हुआ। यदि इसे जीवनशास्त्रीय भाषा म कहे तो यह वृत्त की द्विलिंगी दशा थी जो अपने म पूर्ण और अनित्य थी।

अण्डकोष की धारणा भी उत्पत्तिमूलक मिथको म समान रूप से प्राप्त होती है जो वृत्त का ही प्रतिरूप है। तिब्बत और पालीनेशियन मिथको मे विश्व की उत्पत्ति 'अण्डकोष' से ही मानी गयी है। बालक के जन्म से इन मिथको का सम्बन्ध माना गया है जो पुरुष और नारी के सामूहिक मनोच्चारण

१ दि वे ऐण्ड इट्स पावर, आर्थर वैले, पृ० १४

से सम्बन्धित था। इस प्रकार संसार का इतिहास और उस जाति विशेष के के इतिहास को विश्वोत्पत्ति से जोड़ा गया और उसे यातुक अनुष्ठानों के द्वारा पुष्ट किया गया।[1] इन विश्वोत्पत्तिमूलक मिथकों के यातुक प्रभाव के द्वारा (उच्चारण) रोगी और उसकी अपूर्णताओं की चिकित्सा की जाती थी।

अण्डकोष के समान गर्भाशय का भी संसार की उत्पत्ति का 'उत्स' माना गया जो हम प्राचीन मिथकों में किसी न किसी रूप में प्राप्त होती है। यह भी *आदिगोलक का रूप है जिससे समस्त सृष्टि का जन्म हुआ।* यह *'गर्भाशय'* एक प्रकार का 'आदिरूप' (आर्किटाइप) है[2] जो वृत्त या गोलक का पर्याय है। ये आदिरूप अब भी 'मनस' के अंग हैं और इसका प्रत्यक्षीकरण स्वप्नों में बिम्बों और प्रतीकों के रूप में होता है। यह बिम्बात्मक प्रकटीकरण कभी सर्प के रूप में, तो कभी समुद्र, नदी या सरोवर के रूप में प्राप्त होता है। इस प्रकार यह इन आदिरूपों या सरोवर के रूप में प्राप्त होता है। इस प्रकार इन आदिरूपों का सम्बन्ध अचेतन से है और सांस्कृतिक प्रक्रिया में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

गर्भाशय का सम्बन्ध केवल स्त्री से जोड़ना उचित नहीं है जैसा कि फ्रायड ने इसे शुद्ध यौन प्रतीक माना है। सत्य में गर्भाशय एक ब्रह्माण्डीय बिम्ब है और स्त्री का गर्भाशय उसका एक अंगमात्र है जहाँ से व्यक्ति का उद्भव हुआ है। यह 'आदिरूप' केवल एक अर्थ का वाचक नहीं है, पर अनेकार्थी है। यह केवल 'एक तत्व' अथवा शरीर का एक अंग मात्र नहीं है, अपितु एक ब्रह्माण्डीय क्षेत्र है जिसमें अनेक तत्व छिपे हुए हैं। अतः 'महामाता' का बिम्ब सांसारिक 'माता' का बिम्ब नहीं है। यह गर्भाशय का बिम्ब दो विलोमों की समरसता है और उनकी एकता है। एक तत्व है विश्वमाता का और दूसरा है विश्वपिता का जो अविभाज्य और एक दूसरे के पूरक हैं। यह 'विश्व पिता-माता' एक जैविक प्रतीक है जो उत्पत्ति और विकास का एक 'पूर्णतत्व' है जिससे प्रत्येक वस्तु का जन्म होता है। यह 'पूर्णतत्व' विलोमों का संघात है—पर और अपर, माता और पिता, स्वर्ग और धरती, ईश्वर और संसार जिन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। यही अनंत अस्तित्व है जिससे

१ ब्रिटानिका विश्वकोश, खण्ड १५, १९३२-३३
२ 'आदिरूपों के स्वरूप का विवेचन 'मिथ की मनोवैज्ञानिक व्याख्या' के अंतर्गत हो चुका है।

प्रत्येक वस्तु का उद्भव हुआ है, वही वस्तुओ का विनाश और फिर उसका नया रूपान्तरण करता है। यह एक अनन्त प्रक्रिया है जो ऊर्ध्वगामी और दिव्य है। मिस्री 'एटुन' और ब्रह्म तथा प्रजापति के बिम्ब इसी दिव्यता का प्रकट करते हैं। पैरामिड पाठ कहता है—'एटुन ने अपना लिंग अपने हाथ में सुख प्राप्त करने के लिए और एक भाई और बहन को जन्म दिया जिनका नाम क्रमश 'शू' और 'तल्नुत्' था।'[1] इसी प्रकार 'ब्रह्म' ने उत्पत्ति हेतु अपने से 'माया' नामक सृजन शक्ति को उत्पन्न किया और उसकी सहायता से सृष्टि का कार्य सम्पन्न किया। इस प्रकार के उदाहरणों से यह मानना अनुचित होगा कि यह यौन प्रतीकवाद 'अश्लीलता' का पर्याय है, जबकि वस्तुस्थिति यह है कि उस समय का मानव यौन-भावना का अधिक शुद्ध और अनुशासित रूप मे स्वीकार करता था। दूसरी बात यह है यौन-प्रतीकवाद एक सृजनात्मक तत्व का परिचायक है न कि किसी भौतिक या व्यक्ति के लिंग का।[2] भारत और मिस्र मे इस पूर्ण ईश्वर-बिम्ब का विकास आध्यात्मिकता की ओर हुआ जिसने यौन प्रतीकवाद को एक दिव्य-सृजन-शक्ति के रूप में कल्पित किया और समस्त सृष्टि को 'हृदय' और 'वाक्' से उत्पन्न माना। क्रमश चेतना के इतिहास मे एक महत्वपूर्ण घटना घटित हुई जिसने मानव मन को अमूर्तन प्रतीकवाद की ओर अग्रसर किया जहाँ ईश्वर 'जीवन के श्वास' का रूप माना गया। इस विकास-यात्रा में एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह प्रकट होता है कि सृजन-तत्व का क्रमिक प्रत्यक्षीकरण 'बिम्ब' से 'भाव' की ओर हुआ क्योंकि 'हृदय बिम्ब' भाव या विचार का द्योतन करता है तथा जिह्वा-बिम्ब वाक् का प्रतीक है। इस बात की पुष्टि चित्रलिपि से भी होती है जहा विचार और भाव को 'हृदय' से और वाक् का जिह्वा से सम्बन्धित किया गया है। इस बिन्दु पर आकर अनेक मिथकों में सृष्टि की उत्पत्ति और विकास को 'ईश्वर के शब्द' से माना गया जो मूलत दिव्य और सृजन-शक्ति से परिपूर्ण था। इस 'शब्द' विज्ञान का संकेत हमे ईसाई, मिस्र और भारत की सृष्टिकथाओं में समान रूप से प्राप्त होता है। 'शब्द' की अभिव्यक्ति ही संसार और विश्व की संरचना है, यह तथ्य एक प्रकार से मानव की सृजनात्मक प्रवृत्ति का ही पर्याय है जो अपनी गहराई से सृजन तत्व को क्रियाशील करता है और अपने

१ उद्धृत—ओरिजिन एण्ड हिस्ट्री आफ कान्शेसनेस—से, पृ० १४

२ वही, पृ० १६

को 'अभिव्यक्ति' प्रदान करता है। यही प्रक्रिया 'देवताओं' मे भी प्राप्त होती है। विष्णु ने वाराहावतार के रूप मे समुद्र से पृथ्वी को निकाला और देवताओ ने उनके मन मे ससार की विचारणा की और इस प्रकार, सृजनात्मक शब्द के द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान की। इसी प्रकार 'ब्रह्म' की धारणा म शब्द की सृजन शक्ति का सकेत 'शब्द-ब्रह्म' के रूप म प्राप्त होता है। यदि गहराई से देखा जाय तो 'तपस' एक प्रकार का 'आतरिक' ताप है जा सृजन-शक्ति का प्रतीक है जिससे प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति हाती है। यही आस्तित्व है जा स्वय अपन का जन्म देता है और फिर सृष्टि करता है। मिस्र के धर्मग्रन्था म कहा म कहा गया है कि 'मेरा नाम वही था जिसने स्वय अपन का जन्म दिया। मैं सभी देवताआ म प्रथम देवता हूँ' तैत्तरीय ब्राह्मण म भी प्रजापति न पहले पृथ्वी पर अपने पैर स्थापित किए आर फिर उसन सोचा कि मैं अपना विस्तार करूँ। उसने ताप उत्पन्न किया और इस प्रकार स्वय गर्भधारण किया। इस प्रकार के उदाहरणा से एक बात यह स्पष्ट हाती है कि सृष्टि मिथका का केवल यौन प्रतीकवाद से नही जाडा जा सकता है क्याकि य मिथक जिस 'बिम्ब' का निमाण करते हैं व लिंग भेद से परे हैं। यही कारण है कि सृजनात्मक शब्द, श्वास मूलत सृजनात्मक आतमभाव है जो स्वय म ही पूर्ण है जिसका अस्तित्व हम प्राय सभी मिथका म किसी न किसी रूप म प्राप्त हाता है। यह ही परम आदितत्व है जा आरम्भ म एक सृजनात्मक शक्ति के रूप म अवतरित हुआ जिसस सब कुछ उत्पन्न और गतिशील हुआ, शब्द श्वास और प्राण सभी उसी के द्वारा क्रियाशील हुए।[1]

४ शरीर विन्यास का आदिरूप

चेतना के विकास के साथ एव अन्य यातुक बिम्ब का आविर्भाव हुआ जा मानव शरार से सम्बन्धित था और अनेक बिम्बा और प्रतीका का सम्बन्ध शरीर क किसी विशेष अग स जाडा गया। इस आदिम शरीर सरचना का प्रयाग आधुनिक मनाविज्ञान म प्राप्त हाता है जहाँ उदर, वक्ष और कपाल (मस्तिष्क) का महत्व उनके प्रतीकात्मक सन्दर्भ म प्राप्त हाता है। यहाँ पर उदर का सम्बन्ध मूल प्रवृत्तिया स, वक्ष का सन्दर्भ (हृदय) संवदना के क्षेत्र स तथा कपाल (मस्तिष्क) का सम्बन्ध आत्मा की क्रियाआ स है। आज भी मनोविज्ञान और भाषा विज्ञान शरीर क इस आदिम मूल विन्यास स प्रभावित एव अनुप्रेरित हैं। इस विन्यास का एक महत्वपूर्ण विभाग

कुडलिनी-योग मे प्राप्त होता है जहाँ कुडलिनी के रूप मे ऊर्ध्वगामी चेतना, शरीर मे स्थित 'चक्रों' का भेदन कर आत्म-चेतना के 'सूय' का साक्षात्कार करती है जो एक प्रकार से अचेतन का अतिक्रमण है।

मूल मानव का यह आदि शरीर विन्यास एक ऐसा आदिरूप है जिसका बिम्ब रूप यह समस्त विश्व की रचना है। यह प्रतीक समस्त मिथको मे प्राप्त होता है जहा ससार के अश और भाग का सादृश्य भारत, मेक्सिको और बवाला आदि मिथका म देखा जा सकता है। इससे यह सिद्ध होता है कि केवल ईश्वर ही नही, पर समस्त सृष्टि की रचना मानव बिम्ब म हुई है। इस प्रकार शरीर विन्यास से विश्व और देवताओ का सम्बन्ध और उनकी समानता इस बात की द्योतक है कि मानव विश्व के 'केन्द्र' म है। यहा पर यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि मानव शरीर से जो कुछ भी बाहर निकलता है (बाल, मलमूत्र आदि) वह मूलत सृजनात्मक है। यही कारण है कि बाल, मल, मूत्र शब्द, श्वास, स्वेद और वीय आदि ससार की उत्पत्ति के स्रोत है और पूण का यह एक प्रकार से 'जन्म' कहा जा सकता है।[1] दूसरे शब्दो मे मानव बिम्ब के रूप म यह 'विराट' की कल्पना है। गीता मे श्री कृष्ण का यह विराट रूप इसी तथ्य की ओर सकेत करता है। यही नही, 'अवतार' की धारणा मे भी विपरीत रूप म 'विराट' का मानवीकृत रूप म अवतरण मानव शरीर की एक धातुक एव तात्विक भूमिका को ही चरितार्थ करता है जो आदिमानव की मिथकीय कल्पना का एक मनोरजक और सारगर्भित रूप माना जा सकता है। इस प्रकार, शरीर की क्रियाएँ एक 'प्रतीकवाद' का रूप ग्रहण कर लेती है जो मनस की प्रक्रिया है।

इस प्रकार 'अहतत्व' जो वृत्त या गोलक के रूप म आरम्भ होकर क्रमश गर्भाशय की दशा को प्रकट करता है—यह सारी प्रक्रिया 'अह' का चेतना प्रसार ही कहा जा सकता है जो उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट होता है। 'जब 'अह' भ्रूण दशा का अतिक्रमण कर लेता है, तब 'वह' ससार के प्रति एक नयी प्रवृत्ति का परिचय देता है। इस नये परिवतन के प्रकाश म आदि रूपो, प्रतीको मिथको और देवताओ के स्वरूप म रूपान्तरण और परिवतन की दशा लक्षित होती है। इस दशा मे 'अह' के लिए यह ससार दुख और सुख का स्वरूप हो जाता है और उसी से वह अपने दुख और सुख का अनुभव करता है। यह

---

१ द आरिजिन ऐण्ड हिस्ट्री आफ कान्शसनेस, न्यूमान, पृ० २५-२६

साकार रूप उसका अस्तित्व है जो उत्पत्ति, विकास और विनाश (मृत्यु) के अन्तर्निहित को उद्घाटित करता है। इस प्रकार महान् 'मातृदेवी' की अवधारणा में दो रूप प्राप्त होते हैं, एक वह रूप जो भयंकर एवं विध्वंसकारी रूप है और दूसरा वह जो प्रेम और दया का प्रतिरूप है। महामाता का यह 'रूप' विश्व की 'सम्पदा' और मानव की सारी सृजना और विनाश का एक ऐसा परम निष्ठ प्रकार है जो सभी मिथकों में किसी न किसी रूप में प्राप्त होता है।[1]

२. महामाता का बिम्ब और सृजनतत्व

इस सन्दर्भ में एक ध्यान देने योग्य बात 'स्त्री' और 'पुरुष' तत्व के विकास से सम्बन्धित है। इस सन्दर्भ में एक मौलिक नियम है, वह यह कि स्त्री में चेतना का स्वरूप पुंलिंग स्वभाव का होता है। इसे ही युंग ने 'अनीमस'[2] की संज्ञा दी है जो यह प्रकट करता है कि चेतना का स्वरूप पुंलिंग है चाहे वह स्त्री का सन्दर्भ ही क्यों न हो, पर दूसरी ओर अचेतन का स्वरूप 'स्त्रीलिंग' है जो पुरुषों में प्राप्त होता है। महामाता की अवधारणा में यह तत्व प्राप्त होता है जब 'वह' अपना भयंकर रूप प्रदर्शित करती है और दूसरी ओर 'महामाता' के इस अस्तित्व में 'उर्वरता' और कृषि प्रतीकवाद का भी समावेश प्राप्त होता है। 'उर्वरता' की भावना के कारण 'महामाता' का सम्बन्ध 'धरती' से भी माना गया है और इस प्रकार धरती और स्त्री पर्यायवाची शब्द मान गये।

इस प्रकार मातृदेवी या महामाता का बिम्ब एक सृजनात्मक तत्व के रूप में अवतरित हुआ और इसका एक पूरक सम्बन्ध पुत्र या पुंलिंग प्रकृति से हो गया। महामाता और परम पुत्र का यह सम्बन्ध अनेक मिथकों में प्राप्त होता है जहाँ वह पुत्र भी है और उसका प्रेमी भी। स्त्री और पुरुष का यह 'अस्तित्व' इस तथ्य को भी व्यक्त करता है कि 'माता' का अस्तित्व पिता या पुरुष से पूर्व है। इस दृष्टि से, माता सृजनात्मक शक्ति का प्रतीक है और पुरुष उसकी संरचना और माता 'कारण' है और पुरुष उसका 'कार्य'। अस्तु, 'माता' जीवन प्रदान करने वाली आदिशक्ति है, और वह पुंलिंग प्रवृत्ति से पूर्व है जो उसे भी जन्म देती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्री का प्रथम अस्तित्व 'माता' का है और पुरुष का प्रथम अस्तित्व पुत्र या प्रेमी का है। अतः साइबल जो माता है वह 'एटिस' को अधिकृत करती है, मरक्रियस डियाना को और

१ द आरिजिन एण्ड हिस्ट्री आफ कान्शसनेस, पृ० ४०-४१
२ इसका विवेचन मिथ की मनोवैज्ञानिक व्याख्या के अन्तर्गत हो चुका है।

फेटान और एफ्रोडाइट को जो 'माता' के अनादि सर्जक रूप को प्रतिपादित करती है। यही नहीं, पूर्वीय संस्कृतियों में एटिस, एडोनिस और आसरिस के बिम्ब केवल माता से उत्पन्न नहीं होते हैं, पर वे उसके प्रेमी भी हैं।[1] ये सभी पुरुष-बिम्ब माता के प्रेमी हैं, उसी के द्वारा मृत्यु को प्राप्त होते हैं और फिर 'माता' से ही जन्म लेते हैं। यहाँ पर पुरुष तत्व निष्क्रिय है और पूर्णरूपेण 'महामाता' पर आश्रित है। इस स्थिति में एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व का संकेत प्राप्त होता है, वह है, लिंग-मिथ का उर्वरक रूप जो 'महामाता' की भावना से जुड़ा हुआ है क्योंकि 'महामाता' के लिए पुरुष का 'लिंग' एक पवित्र रूप है और इस लिंग सम्बन्ध का विकास देवी और देवताओं के प्रतीकार्थ में भी प्राप्त होता है। मातृदेवी या महामाता इस प्रेमी-पुत्र को केवल उसके 'लिंग' के लिए प्रेम करती है और इस प्रकार इसका महत्व केवल लिंग तक ही सीमित न होकर सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक है। ये सभी युवक निष्क्रिय एवं बलहीन 'अहं' के रूप हैं, और इनकी नियति उनके समष्टि रूप में निहित है। अतः इसका अस्तित्व व्यक्ति के रूप में प्राप्त नहीं होता है। महामाता का पुत्र, प्रेमी और उर्वर देवताओं से सम्बन्ध केवल उनके लिंग से है जिन्हें वह एक 'माध्यम' के रूप में प्रयोग करती है।

महामाता एक पवित्र कौमार्य का भी रूप है जो मरियम, कुन्ती और अनेक देवदासियों की भावनाओं में विकास प्राप्त कर सका। महामाता का यह रूप अपने में स्वतन्त्र और निरपेक्ष है और वह किसी भी पुरुष पर आश्रित नहीं है।[2] इस प्रकार महामाता उर्वरा शक्ति का प्रतीक है जो अनेक मिथकों में सृजनात्मक शक्ति के रूप में विकसित हुई जो निरपेक्ष, स्वतन्त्र और सर्व-शक्तिमान सृजन-तत्व है।

इसी के साथ एक तथ्य की ओर संकेत करना आवश्यक है कि तरुण प्रेमी अपने को महामाता की सापेक्षता में समर्पित कर देता है जो एक स्वाभाविक समर्पण का रूप है जो अन्ततः मृत्यु के लिए अभिशप्त है क्योंकि प्रकृति की तरह, माता के द्वारा (धरतीमाता) उसका पुनर्जन्म होता है। इस पुनर्जन्म के लिए 'वह' महामाता पर पूर्णरूप से आश्रित है जिसका संकेत हमें ग्रीक ट्रेजेडी में, विशेषकर 'इडीपस' आख्यान में प्राप्त होता है। इस स्थिति तक पुरुष तत्व

१ गोल्डेन बो, फ्रेजर, पृ० ४७८ (अपरिवर्धित संस्करण, १९५२)
२ वोमनस् मिस्ट्रीज, एम० हार्डिङ्ग, पृ० ५०

का स्वतन्त्र-अस्तित्व प्राप्त नही होता है और उसमें उस 'शक्ति' का भी अभाव दृष्टिगत होता है जो महामाता की शक्तियो का सामना कर सके।

इस संघर्ष का रूप हम आगे प्राप्त होता है जब पुरुष तत्व एक द्वन्द्व को जन्म देता है (पर अब भी वह महामाता के अधिकार क्षेत्र म ही है) और आत्म-हत्या भी करता है जैसाकि हमे एटिस, थाटो आदि म प्राप्त होता है। नारसिसस और पैनथियस म भी यह द्वन्द्व का रूप देखा जा सकता है जो यह स्पष्ट करता है कि 'अह' चेतना क्रमश अपने प्रति सजग हो रही है और आत्म-साक्षात्कार की दशा की ओर उन्मुख है। ऐसी दशा म क्रमश 'महामाता' अनेक अप्सराओ, परियो, माताओ, विमाताओ और प्रेमिकाओ आदि रूपो म खडीकृत हो जाती है और इस प्रकार क्रमश पितृतत्व का (पुरुप तत्व) वर्चस्व प्राप्त होने लगता है जो यह भी स्पष्ट करता है कि सभ्यता का विकास मातृसत्ता से पितृसत्ता की ओर प्राप्त होता है। सृष्टि मिथक इस सक्रमण को अप्रत्यक्ष रूप म प्रकट करते हैं। इसका एक उदाहरण गिल्गैमश का मिथ है जो एक शक्तिशाली व्यक्तित्व है और जिसे हम एक 'यथार्थ हीरो' की सज्ञा भी दे सकते हैं जो 'महामाता' से अधिक क्रियाशील और प्रभावशाली है।[1] अत अह चेतना और पुरुपत्व के विकास के साथ महामाता का बिम्ब पृष्ठभूमि म चला जाता है और पितृसत्तात्मक युग इसे दो भागो म विभक्त कर देता है—एक 'अश चेतन मन मे शिव या पवित्र माता के रूप म स्थिर हो जाता है और दूसरा, अचेतन म भयानक 'माता' के रूप मे पदावनत हो जाता है।

६ विलोम का सिद्धान्त

विकास की दृष्टि से चेतना का यह विभाजन एक प्रकार से 'विलोम का सिद्धान्त' कहा जा सकता है जहाँ पितृ और मातृ तत्वो का एक विलग अस्तित्व विकसित होता है जो आरम्भ मे 'एक' थे। यह विलोमो का विभक्तीकरण धरती और आकाश, ऊर्ध्व और पर, प्रकाश और अन्धकार, दिन और रात तथा जड और चेतन आदि युग्मो म अनेक सृष्टि मिथको का एक ऐसा कथ्य है जो विकास की प्रक्रिया को अपने तरीके से समझने का प्रयत्न है। आदिम मानव का यह विश्वास था कि धरती और आकाश मूलत एक दूसरे से आबद्ध और जुडे हुए हैं और किसी देवता या हीरो ने अपनी अपार शक्ति के द्वारा उन्हे अलग

---

१ दि ओरिजिन एण्ड हिस्ट्री आफ कान्शेसनेस, पृ० ८३

कर दिया और तब से वे एक दूसरे से अलग हैं।[१] पॉलीनिशी मिथकों मे (तथा अन्य मिथकों मे भी) रांगी और पापा जो आकाश और धरती के प्रतीक हैं उनसे समस्त वस्तुओं, देवताओं और मानवों का उद्भव माना जाता है।

इस प्रकार बार-बार हम सृष्टि के मूल प्रतीक 'प्रकाश' की ओर जाते हैं जो मूलत चेतना का स्वरूप है और यह दशा लगभग सभी सृष्टि मिथकों मे प्राप्त होती है। प्रकाश का जन्म अंधकार के कोख से होता है जो अनादि 'गोलक' का रूप है। यही स्थिति मन्वन्तर की धारणा मे भी प्राप्त होती है जहां सृष्टि का आरम्भ एक गोलाकार पिण्ड से माना गया है जिसे आधुनिक विज्ञान भी स्वीकार करता है। यह चेतना रूपी प्रकाश का उदय मानव की विकास यात्रा का एक अत्यन्त आवश्यक तत्व है जिसके द्वारा 'वह' अपने 'अहं' का साक्षात्कार कर सका जिससे 'मैं मैं हूँ' का बोध हुआ, यही व्यक्ति की आत्मचेतना का स्वरूप है, जिसे उपनिषद् मे 'अहं ब्रह्मास्मि' की संज्ञा दी गयी। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' इसी तथ्य को प्रकट करता है जो मानव विकास और विश्व रचना का एक 'आदि रूप' है जिसने मिथकीय कल्पना को गति प्रदान की। सृष्टि का आरम्भ 'प्रकाश' स्वर्ग और धरती के आदि रूपों के द्वारा विलोमों की रचना करता है जो समस्त विलोमों का मूल तत्व है।[२] इससे पूर्व 'प्रकाश्य-अधिकार' का राज्य था। प्रथम प्रकाश के उदय के साथ एक घटना घटित हुई जिसने 'पर' को 'अपर' से विलग किया, मानवता के 'दिन' का आरम्भ हुआ और फलत विश्व के सारे तत्व दृष्टिगत होने लगे। कैसिरर का यह मत है कि प्रकाश और अंधकार के विलोम ने मानव के आध्यात्मिक जगत को, उसकी दिव्यता को एक आकार प्रदान किया और यह प्रक्रिया केवल धर्म और अनुष्ठानों तक ही सीमित नहीं है, पर इसका स्वरूप हम मानव की अन्य क्रियाओं (जैसे दर्शन, राजनीति, इतिहास, साहित्य आदि मे) भी प्राप्त होता है।

७ दिक् की कल्पना

सृष्टि रचना के इस स्वरूप मे एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व का समावेश हुआ और वह तत्व है 'दिक्' की अवधारणा का विकास। जब धरती और मेघ के देवताओं की कल्पना की गयी जो इस विलोम के मध्य मे अवतरित हुए—इसने

---

१ गोल्डेन बो, फ्रेजर, पृ० १४२

२ दि ओरिजिन ऐण्ड हिस्ट्री आफ कान्शेसनेस, पृ० १०६-१०७

'निद' की कल्पना को एक आधार प्रदान किया। इस 'दिव' का स्वरूप पूर्ण-रूपेण 'अमूर्तन' को प्रकट नहीं करता है, क्योंकि यहाँ पर 'निद्' की धारणा एक प्रकार से मानुपरक है जो क्रमश स्वप्न प्रतीकवाद के निकट है। मेरे विचार से यह मत एकांगी है क्योंकि निद की यह तथाकथित आदिम भावना वह आधार भूमि है जहाँ से दिव का अमूर्तन धारणा का विकास सम्भव हो सका जिसने दिव की विराटता और विस्तार का हृदयगम करने का अपने तरीके से प्रयत्न किया। चेतना के क्रमिक विकास के साथ अमूर्तन क्रिया का भी विकास लक्षित होता है। इस प्रकार सत्कृनिया के बाह्य और आतरिक विकास का प्रारम्भ 'प्रकाश' के आगमन के साथ होता है और फलत 'विलोमा' (जैसे माता-पिता, अधकार-प्रकाश, पर-अपर आदि) का अस्तित्व प्रकट होता है। इन विलोमा का विस्तार समस्त सृष्टि म व्याप्त है, यहाँ तक कि 'मैं' और 'तुम', नर और नारी तथा सद् और असद् प्रवृत्तिया म विलोमा का स्वरूप स्पष्ट प्रतीत होता है। देवासुर सग्राम, जो मियका का एक महत्व-पूर्ण कथ्य है, विलोम के इसी द्वन्द्व का साकार करता है।

मानव के इस 'अह' का विस्तार एक प्रकार से उसके 'व्यक्तित्व' का विस्तार है जो उसे विकास के उच्च धरातल पर ले जाता है। इस बिन्दु पर उसका सापेक्ष सम्बन्ध वस्तुओ से, अन्य व्यक्तिया से, ससार से तथा अपने 'स्व' या ईश्वर से होता है। इस प्रकार 'वह' एक अधिक गुणात्मक उच्च 'एकता' का अग बन जाता है और इस भावना का जन्म विलोमा के अस्तित्व पर आधारित हैं जो आदिपितृतत्व (माता-पिता) के विभाजन से उद्भूत होता है जिसका सकेत पहले किया जा चुका है। आदिपैतृकतत्व के इस विभाजन के द्वारा उच्च आत्मिक जगत और निम्न वस्तुजगत का द्वैत प्रकट होता है और इस प्रकटीकरण म क्रमश नारी तत्व की सापक्षता (माता) मे 'पुरुष तत्व' अधिक प्रभावशाली एव क्रियाशील होने लगता है। 'पुरुष तत्व' का 'चेतना और नारी तत्व' का 'अचेतन' से जोडकर दोनो की क्रियाशीलता को अथवत्ता प्रदान की गई है। यही कारण है कि सृष्टि मियको म इन दोनो 'तत्वा' को एक दूसरे का पूरक माना गया है जो अनक देवी-देवताओ के प्रतीकाथ मे निहित है।

---

१ यह मत डेजल, न्यूमॉन आदि मनोवैज्ञानिका का है।

८ अवतार और विकासवाद

सृष्टि-मिथकों में प्राणी जगत के विकास को भी देखा जा सकता है क्योंकि यह विकास भी चेतना और 'अह' का क्रमिक विकास है जिसे मिथकीय कल्पना कहकर नकारा नहीं जा सकता है। हिन्दू मिथकों में इस प्राणी विकास को 'अवतार' की भावना से समझा जा सकता है जिसे आधुनिक वैज्ञानिक विकासवाद भी किसी सीमा तक स्वीकार करता है। अवतारों की दस संख्या एक प्रकार से मानवेतर प्राणियों से मानव नामधारी प्राणी तक की विकास यात्रा का सूचक है जो हिंदू मिथकों की कदाचित् अपनी विशिष्ट यथार्थ मूलक कल्पना है। इन अवतारों के द्वारा क्रमिक रूप से 'सगठना' की जटिलता भी लक्षित होती है क्योंकि विकास-क्रम में जीवधारियों की सगठना (शारीरिक एव मानसिक) एककोषीय प्राणियों से अनेक कोषीय प्राणियों तक क्रमशः जटिल से जटिलतर होती जाती है।[1] मत्स्य से लेकर कल्कि अवतार तक की विकास यात्रा इस तथ्य की ओर संकेत करती है। पहला अवतार 'मत्स्य' है जो नितांत जल में रहने वाला जीव है। इसके बाद 'कूर्म' अवतार है जो अंशतः जल और पृथ्वी दोनों पर रह सकने में समर्थ है जो विकास के अगले चरण की ओर संकेत है जब जीवधारी जल और धरती के दो माध्यमों में एक साथ रह सकने में समर्थ था। वैज्ञानिक शब्दावली में इसे 'एम्फीवियन' की संज्ञा दी गयी है। वाराहावतार तक आते-आते स्तनधारी जीवों का प्रादुर्भाव होता है जो धरती और आकाश में विचरण करने वाले प्राणी हैं। चौथा अवतार नरसिंह है जो एक ओर 'नर' और दूसरी ओर 'सिंह' (पशु सामान्य प्रवृत्ति का प्रतीक) की मिश्रित अभिव्यक्ति है। यह अवतार 'नर' में पशु प्रवृत्ति के अंश की ओर संकेत करता है जो उसे मानवेतर प्राणियों से जोड़ता है। इस 'पशु' अंश का उन्नयन 'वामनावतार' में होता है जो स्पष्ट रूप से 'होमो' (मानव विवेक) का स्वरूप है। इस पर भी रक्त-पिपासा की जो प्रवृत्ति मानव में अब भी शेष है उसी की अभिव्यक्ति 'परशुराम' अवतार है जो मानव के आक्रमणकारी रूप का प्रतीक है। 'सातवां रामावतार' है जो परशुराम की वृत्ति का दमन करता है और उसका उदात्तीकरण भी करता है। मानव चेतना और अहं चेतना के ऊर्ध्वगामी रूप का प्रतीक रामावतार है जो पुरुषोत्तम भी है। इसके बाद कृष्णावतार में चतुर्मुखी व्यक्तित्व का विकास होता है जिसमें बुद्धि-मनस् का सुन्दर संयोग प्राप्त होता है। नवां अवतार

---

१ ह्यूमन डेस्टनी, लीकोम्ते ड्यू, पृ० ३१

'बुद्ध' है जो तर्क शक्ति का प्रतीक है। इस स्थिति पर आकर मानव के भावी विकास का संकेत प्राप्त होता है जो कल्कि 'अवतार में बुद्धिमत्ता' की भावी विकास सम्भावनाओं की ओर संकेत करता है।[1] अंतिम दो अवतार मानव-मन की भावी विकास के सम्भावनाओं को लक्षित करता है जिसके द्वारा मानसिक विकास के अधिक सूक्ष्म स्तरों का भावी उद्घाटन सम्भव है जिसे महर्षि अरविंद ने 'अतिमानव' की संज्ञा दी है।

६ त्रिमूर्ति की धारणा और सृष्टि-प्रक्रिया

सृष्टि-मिथकों में ब्रह्माण्डीय सत्य का भी दिग्दर्शन प्राप्त होता है क्योंकि इन मिथकों के द्वारा विश्वजनीन 'सत्य' का संकेत प्राप्त होता है। जैसाकि हम देख आये हैं कि सृष्टि के लिए सृजनशक्ति की आवश्यकता होती है जिसे गोलक, अण्डकोष, महामाता, ब्रह्म और विश्व-पैतृक तत्व के रूप में चित्रित किया गया है जो मिथकीय कल्पना की एक सार्वभौम प्रक्रिया है। सृष्टिक्रम में सृजन तत्व, अवस्थिति और विलय (संहार) की तीन प्रक्रियाएँ एक साथ चलती हैं और इस तथ्य का एक मिथकीय रूपाकार 'त्रिमूर्ति' (ट्रिनिटी) की धारणा है। ब्रह्म की अवधारणा में ये तीनों तत्व समाहित हैं और दूसरी ओर इन तीनों तत्वों को 'ॐ' की तीन मात्राओं अकार, उकार और मकार के द्वारा व्यंजित भी किया गया है। ओंकार का महत्व भाषा और वाणी की दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि वाणी या वर्णों में अकार की निहिति है जो सृष्टि में 'अकार' की सर्वव्यापकता का रूप है। जिस प्रकार अकार समस्त वाणी में व्याप्त है, उसी प्रकार वैश्वानर (अग्नि) समस्त विश्व में व्याप्त है। अतः सर्वव्यापकता की दृष्टि से अकार और वैश्वानर में समानता है। इस प्रकार 'अकार विश्व में व्याप्त वह तत्व है (ब्रह्मा) जो सृजनात्मक और विकासात्मक है।[2] इसी प्रकार 'तैजस' ओउम् की दूसरी मात्रा 'उकार' का पर्याय है। 'उकार' में तेजस की समानता का कारण यह है कि दोनों का धर्म उत्कर्ष है। जिस प्रकार उकार, अकार और मकार के मध्य में स्थित है, उसी प्रकार विश्व और प्राज्ञ के मध्य में तैजस है। मध्य में होने के कारण उकार का धर्म समरसता और सन्तुलन है जिसके द्वारा सृष्टि स्थित या अस्तित्व में रहती है। यही 'विष्णु' का प्रतीक है। मकार और प्राज्ञतत्व की समानता है। यह

१ पुरानाज इन दि लाइट आफ माडर्न साइंस, के० ए० अय्यर, पृ० २०७
२ माण्डूक्योपनिषद्, आगम प्रकरण, पृ० ६८ (उपनिषद् भाष्य खण्ड २)

समानता 'मिति' के कारण है जिसे शकराचार्य ने 'मान' का प्रतीक माना है। जिस प्रकार प्रस्थ (एक प्रकार का बाट) से अन्न तौला जाता है, उसी प्रकार तैजस और प्रलय (विलय) मापे जाते हैं। ओकार की समाप्ति पर अकार और उकार 'मकार' मे प्रवेश करके, उससे पुन अभिव्यक्त होते हैं या निकलते है।[1] यह क्रम चला करता है जो यह स्पष्ट करता है कि उत्पत्ति और स्थिति का पयवसान 'मकार' तत्व मे होता है और पुन मकार से ये दोनो तत्व बहिर्गामी होते हैं। यह क्रम निरन्तर चला करता है। इन तीनो शक्तियो का मानवीकरण 'त्रिमूर्ति' की धारणा मे प्राप्त होता है। सृष्टि-रचना मे इन तीनो तत्वो का ब्रह्मा, विष्णु और महेश शिव) की समष्टिपूण और सामरस्यपूण धारणा या प्रतीक के द्वारा दर्शाया गया है। सृष्टि रचना हेतु यह समरसता आवश्यक है। ग्रीक मिथको मे भी 'त्रिमूर्ति' की धारणा प्राप्त होती है। डूयूबस ने इन तीनो शक्तियो (सृजन, स्थिति और प्रलय) या देवो का सम्बन्ध क्रमश पृथ्वी, जल और अग्नि से जोडा है। इससे वह इस निष्कष पर पहुँचे हैं कि प्रकृति के तीन तत्व—पृथ्वी (ब्रह्मा और ज्यूपिटर रूप), जल (विष्णु, नेप्च्यून) और अग्नि (शिव, प्लूटो रूप) जो आदिमानव की आश्चय भावना और यातुक भावना के आधार थे, *उनका एक अधिक सार्थक और 'तार्किक' रूप त्रिमूर्ति की* धारणा मे विकसित हुआ।[2] माता के आदिरूप मे 'महामाता' और धरती माता के प्रतीकार्थ मे उत्पत्ति और सृजन की भावना निहित है और त्रिमूर्ति की धारणा मे पृथ्वी की सृजन-शक्ति का समावेश परोक्ष रूप से प्राप्त होता है। दूसरी ओर विष्णु (नेपच्यून) की भावना मे 'जल' तत्व का समाहार स्पष्ट रूप से प्राप्त नही होता है, पर शिव की भावना म 'अग्नि' का रूप उसके सहारक एव सृजनात्मक रूप मे देखा जा सकता है। शिव की धारणा मे प्रलय और सृजन दोनो का समाहार है जो शिव के अन्य नाम 'रुद्र' और 'महादेव' के द्वारा व्यजित होते हैं। इस प्रकार शिव वह तत्व है जिसम उत्पत्ति और विलय की दोनो प्रक्रियाओ का रूप प्राप्त होना है और फिर, उसी से सृष्टि का आरम्भ होता है—यह क्रम निरन्तर चला करता है।

११ जल प्लावन का मिथक

सृष्टि मिथको का विवेचन उस समय तक अपूर्ण रहेगा जब तक सृष्टि के अन्त या सहार के मिथको का विश्लेषण न किया जाए। जल-प्रलय का मिथक

१ माण्डूक्योपनिषद्, आगम प्रकरण, पृ० ६८ (उपनिषद् भाष्य खण्ड २)

२ हिन्दू मैनस, कस्टम्स एण्ड सेरीमनीज, डूयूबस, पृ० ५४७

सामान्य रूप में सभी धर्मों और मिथकों में किसी न किसी रूप में प्राप्त होता है। ये मिथक यह बताते हैं कि संसार और मानवता किस प्रकार नष्ट हुए और साथ ही, इस 'प्रलय' (या जल-प्लावन) के बाद केवल एक दम्पति (स्त्री और पुरुष) अथवा कुछ लोग ही जीवित रहे, जिन्होंने पुनः सृजन कार्य में भाग लिया। जल-प्लावन के आख्यान मिलते हैं और इनका संकेत सामान्यतः सभी देशों में प्राप्त होता है परन्तु अफ्रीका में यह मिथक उतना सामान्य नहीं है जितना पूर्वीय एवं पश्चिमीय देशों में।[1] जल-प्लावन के अतिरिक्त मानवता और विश्व अन्त के अन्य मिथक भी हैं जैसे किसी ब्रह्माण्डीय दुर्घटना, भूकम्प, भूधरों का गिरना, किसी संक्रामक रोग का फैलना आदि जो संसार के नाश के कारण समझे जाते थे। इन समस्त मिथकों का यह अर्थ नहीं है कि संसार का यह संहार अंतिम है, पर सत्य यह है कि यह एक जाति का पराभव और दूसरी जाति के उदय को हमारे सामने रखते हैं। मेरे विचार से ये मिथक केवल जाति के उद्भव और विनाश की गाथा ही नहीं कहते हैं, पर विलय की उस प्रक्रिया को भी सामने रखते हैं जिसमें नवीन सृष्टि का पुनः आरम्भ होता है। शिव की अवधारणा इसी तथ्य की ओर संकेत करती है। ये मिथक एक प्रकार से प्रकृति-सत्य को ही प्रकट करते हैं। जल-प्लावन के द्वारा धरती का पूर्णरूप से डूब जाना अथवा अग्नि के द्वारा इसका विनाश होना और फिर इसके पश्चात् 'कौमार्य पृथ्वी' का प्रकट होना—ये सभी प्रक्रियाएँ यह व्यक्त करती हैं कि अव्यवस्था से ही सृष्टि का आरम्भ होता है और यह क्रम चला करता है।

अनेक मिथकों में जल प्लावन का सम्बन्ध 'परमशक्ति या पुरुष' से है जिसकी इच्छा मात्र से संसार का अंत घटित होता है। यह घटना कभी-कभी उस समय भी घटित होती है जब संसार में पाप बहुत बढ़ जाते और इन्हें नष्ट करने के लिए 'परम पुरुष' प्रलय की विभीषिका का सहारा लेता है। अमरीका के इण्डियनों में ऐसे मिथ प्राप्त होते हैं जो यह धारणा पुष्ट करते हैं कि जल प्लावन के बाद पुनःसृष्टि होती है और इसमें वे ही नष्ट होते हैं जो पापी होते हैं। इसी के साथ कुछ आदिम जातियों में (अफ्रीका) यह भी विश्वास है कि संसार का अंत तीन या चार बार होता है और चौथा अंत (या पाँचवाँ भी) भविष्य में होगा जबकि सूर्य का निपात होगा या वह लुप्त हो जाएगा। कैली-

---

१ ब्रिटानिका विश्वकोष, पृ० ११३८

फोर्निया के 'मैडू' मिथ मे सृष्टिकर्त्ता एक युग्म (स्त्री-पुरुष) का सृजन करता है और उनसे कहता है "जब यह ससार अशिवगुणो से भरपूर हो जाएगा, तब मैं इस ससार का पुन निर्माण करूँगा और फिर तुम्हारा जन्म होगा।"[1] इन मिथको के अध्ययन से एलेक्जेंडर इस निष्कर्ष को सामने रखते हैं कि प्रशात महासागर तट के अनेक मिथको मे पृथ्वी का पुनर्सृजन प्रलय या भयकर प्लावन के बाद होता है और कुछ मिथको मे सृजन और पुनर्सृजन दोनो का सकेत प्राप्त होता है।

'प्रलय' की अवधारणा और उससे सम्बधित मिथको की एक सार्वभौम सत्ता पूर्वीय धर्मों मे भी प्राप्त होती है जिस प्रकार पश्चिमी धर्मों और मिथको मे। वैदिक काल और ब्राह्मण ग्रन्थो (शतपथ) मे 'प्रलय' का 'मिथ' पुनर्सृजन की मान्यता को बल प्रदान करता है जब शतपथ ब्राह्मण मे जल प्लावन के बाद 'मनु' और श्रद्धा (कामायनी) जो प्रलय के बाद सुरक्षित रह जाते हैं, उन्ही के द्वारा फिर से सृष्टि का आरम्भ होता है। पुराणो मे जो चार युगो की कल्पना की गयी है, वह चक्राकार रूप मे सृष्टि और प्रलय के क्रम को प्रतीकात्मक रूप मे रखते है और साथ ही, 'आरम्भ' की 'पूर्णता' का निर्देश करते हैं। यह सहार या प्रलय एक प्रकार का विलय है और एक हजार चक्रो के बाद 'महाप्रलय' का होना भी कल्पित किया गया है। महाभारत और पुराणो मे 'प्रलय' का एक अन्य रूप भी प्राप्त होता है। क्षितिज मे अग्नि का विस्फोट होगा, सात या बारह सूर्यों का आकाश मे उदय होगा जो समुद्रो को वाष्पीकृत कर देगे और पृथ्वी को भस्म कर देगे। उसके पश्चात् बारह वर्षों तक वर्षा होगी जिससे पृथ्वी और मानव विनष्ट हो जाएँगे। तत्पश्चात् फिर से प्रत्येक वस्तु का सृजन होगा और यह क्रम अनन्त काल तक चलता रहेगा। भारतीय विचारधारा मे युगो की कल्पना के पीछे अनन्त सृजन की प्रक्रिया का सकेत प्राप्त होता है जो विलय और विनाश से पुनसृजन की एक चक्राकार प्रक्रिया है। यह एक ब्रह्माडीय प्रक्रिया है जिसे न समझने के कारण कुछ पाश्चात्य विचारको ने युग कल्पना को केवल मात्र आदिम मानव का ससार के वार्षिक नवीनीकरण के अनुष्ठान से जोड़ा है और साथ ही यह भी मत रखा है कि यहा मानव का अन्तिम लक्ष्य ब्रह्माडीय चक्र से पलायन है।[2] भारतीय मिथको का एक मूल तत्त्व है ब्रह्माड की सापेक्षता मे मानव को लोकेट करना

---

१ नार्थ अमेरिकन माइथालाजी, एच० डी० एलेक्जेण्डर, पृ० २६-२७

२ ब्रिटानिका विश्वकोष, पृ० ११७२

और कृष्ण का विराट रूप (विष्णु, ब्रह्मा, महादेव की भावना म भी यही तथ्य है) इसी सापेक्षता का प्रतीकात्मक रूप म रखता है। भारतीय सृष्टि-मिथक मे विश्व की अतिम समाप्ति का समावेश नही है, वहाँ पर सृजन, विलय और प्रलय की चक्राकार स्थिति है जो परोक्ष रूप से 'महाकाल' की एक लीला है।

'आरम्भ' की 'पूर्णता' का मिथ हम मसोपोटामिया, मिस्र, ग्रीक तथा यहूदियो म किसी न किसी रूप म प्राप्त होता है। बेबीलोनिया म अनन्त स्वर्ग की कल्पना प्राप्त होती है और जल प्लावन से सात बार मानव जाति के विनाश और पुनर्सृजन की गाथा प्राप्त होती है। यहूदियो म भी इसी प्रकार जल प्लावन और पुनर्सृजन का मिथ प्राप्त होता है। ग्रीक मिथको मे युगो की कल्पना प्राप्त होती है और 'आरम्भ' की 'पूर्णता' का मिथ भी प्राप्त होता है। ग्रीक मे चक्राकार सिद्धात का भी स्वरूप प्राप्त होता है जिसे सबसे पहले हिसायड ने क्रमिक पाँच युगो म मानवता का क्रमिक विनाश प्रतिपादित किया और हीराक्लिट्स ने चक्राकार सिद्धात को बल दिया जिसका प्रभाव 'स्टॉयक्स' पर भी पडा।[१] यहाँ पर भारतीय या हिंदू मिथको के सृष्टि सिद्धात की प्रतिध्वनि प्राप्त होती है जो यह स्पष्ट करती है कि जलप्लावन और चक्राकार सृजन और प्रलय का एक अनादि क्रम चलता रहता है। प्लेटो ने भी जलप्लावन के मिथ का सकेत किया है।

जूडो-इसाई मिथको म भी ससार के अन्त का मिथक प्राप्त होता है, पर उसमे उपर्युक्त मिथको की सापेक्षता म एक मुख्य अतर है। ईसाई परम्परा मे यह मान्यता है कि ससार का अत केवल एक बार ही होगा जिस प्रकार सृष्टि रचना एक बार ही घटित हुई है। विनाश और जल-प्लावन के बाद ब्रह्माड फिर से अस्तित्व म आएगा। पर यह ब्रह्माड वही ब्रह्माड होगा जिसे ईश्वर ने आरम्भ म जन्म दिया था। यह पुन निर्मित ब्रह्माड अधिक पवित्र और रूपान्तरित होगा और इसका कोई भी 'अत' नही होगा। यहाँ पर 'काल' चक्राकार न होकर अनिवर्त्य और रेखीय है। जिस प्रकार रेखा एक सीधी गति से आगे को जाती है, उसी प्रकार 'काल' की गति भी रेखीय है, उसका प्रत्यावर्तन नही होता है। ईसाइयो के लिए ब्रह्माड के अत का अर्थ है क्राइस्ट का आगमन और स्वर्ग की प्रतिष्ठा। देवदूत यह घोषणा करता है कि ब्रह्माड का पुन नवीनीकरण होगा, नये स्वर्ग और धरती का निर्माण होगा, वहा कोई भी दु ख, दैन्य और घृणा का साम्राज्य नही होगा। इस प्रकार, ईसाई धम म ब्रह्माड का पूर्ण नवीनीकरण और स्वर्ग की प्रतिष्ठा उनके सृष्टान्त-सिद्धात के दो प्रमुख तत्व हैं। □ □

---

१ वही, पृ० ११८०

१ पुल्लिगीकरण-क्रिया और हीरो का उद्भव

सृष्टि मिथकों के अन्तर्गत पुरुष तत्व की क्रमिक प्रधानता और नारी तत्व की वरायता म क्रमिक ह्रास इस तथ्य की ओर सकेत करता है कि चेतना का यह क्रमिक पुल्लिगीकरण 'हीरो' या नायक की धारणा का आरम्भ बिन्दु है जिसने क्रमश हीरो मिथक का सर्वांगीण विकास किया और सास्कृतिक प्रक्रिया मे उसके महत्व को रेखाकित किया। अह चेतना के इस पुल्लिगीकरण और विमुक्तिकरण (नारी तत्व से, महामाता से) के द्वारा 'अह' ने 'हीरो' का रूप धारण किया। इस प्रकार हीरो का इतिहास, जैसा कि मिथको मे प्राप्त होता है, वह इसी 'अह' विस्तार का प्रतिरूप है जो अचेतन तथा विरोधी तत्व के विरुद्ध सघर्ष करता है और इस प्रकार सास्कृतिक एव ऐतिहासिक प्रक्रिया का एक अभिन्न एव महत्वपूर्ण अग हो जाता है। सृष्टि मिथको का प्रमुख गुण उनकी ब्रह्माडीय अर्थवत्ता है तो हीरो मिथ का प्रमुख गुण उनकी सासारिक अथवत्ता है जो एक प्रकार से इस विश्व के केन्द्र मे है। इस प्रकार 'हीरो एव महत्वपूण आदि प्रारूप या आर्किटाइप है जो सारी मानवता का आदर्श या प्रेरणा स्रोत रहा है और रहेगा। हीरो जहा एक ओर समूह-मन को प्रेरित करता है, वही वह व्यक्ति-मन को भी प्रेरित एव आदोलित करता रहा है।

२ अचेतन और जातिवीर

'हीरो' का उद्गम और विकास जातीय अचेतन का स्वरूप है। युग के अनुसार किसी व्यक्ति विशेष के चारो ओर जो जातीय प्रेम भावना केन्द्रित हो जाती है, उसका स्थान अचेतन मन ही है जो एक प्रकार से 'अचेतन' के प्रति जाति का प्रेम है।[१] ये हीरो हमारे ही अग है जो जाति की सास्कृतिक चेतना के 'हीरो' हैं। हीरो का यह रूप उसकी अति मानवीय शक्ति से भी सम्बन्धित है जिसका स्वरूप हम 'महामाता के अधिकार म, ड्रैगन के सघर्ष म तथा अन्य बाधाओ पर विजय प्राप्त करने म दिखाई देता है। यही से 'जातिवीर'

---

१ साइकालोजी आफ द अन्कान्शस, युग, पृ० १०८

'जातिवीर' या गिलगमेश की भावना का सूत्रपात होता है। इस जातिवीर का आदि रूप उसके यातुक और अलौकिक रूप में भी प्राप्त होता है।[1] आदिम मानव के गुहा-चित्रों में (जो भारत और योरप में प्राप्त हुए हैं) कुछ ऐसे चित्र प्राप्त हुए हैं जो किसी पुरुष द्वारा अस्त्रों से आहत 'पशु चित्र' है जो आखेट की सफलता के लिए किए गए यातु कर्म हैं और ये तथाकथित जातिवीर सिंह या वृषभ पर विजय प्राप्त करते भी दिखाए गए हैं।[2] जातिवीरों की यह यातुक-शक्ति 'हीरो' भावना का एक अभिन्न अंग है। सैमसन ने इस अति-मानवीय शक्ति से शेर को पराजित किया। एन्किद् और गिलगमेश भी यही कार्य करते हैं।

३ हीरो की द्विविधि पैतृकता

हीरो के स्वरूप का सम्बन्ध दो तत्वों से है। एक उनके जन्म से और दूसरे, उसके द्विविधि पैतृकता से। हीरो के दो पिता या दो माता होते हैं। यह तथ्य हीरो-मिथ का एक केन्द्रीय तत्व है। हीरो के एक व्यक्तिगत पिता के अतिरिक्त एक 'उच्च' पिता भी होता है जिसे 'आदिरूपीय' पिता (आरकीटाइपल) का बिम्ब कहा जाता है और यही स्थिति 'माता' के सम्बन्ध में भी प्राप्त होती है। हीरो का यह व्यक्तिगत एवं पराव्यक्तिगत पैतृक रूप एक प्रकार से हीरो ड्रामा का एक अभिन्न अंग है। युंग तथा अन्य मनोविश्लेषकों ने ड्रेगन संघर्ष को तथा भूत या राक्षस युद्ध को 'हीरो' मिथ के साथ जोड़ कर इडीपस ग्रंथि, जो पश्चिमी जगत को सदैव से आन्दोलित करती रही है, इस तथ्य का हीरो की मनस प्रक्रिया या घटना को समझने का एक आधार बनाने का प्रयत्न किया। इस हीरो मिथ के साथ अक्सर यह भी देखा गया है कि माता या पिता में से एक 'दिव्य व्यक्तित्व' का होता है जैसे मातृदेवी या पितृदेवता।

४ पवित्र कौमार्य और हीरो का जन्म

सामान्यतः ये माताएं पवित्र कौमार्य से युक्त थीं जैसा कि प्राचीन संसार में प्राप्त होता है। यह कौमार्य, महामाता की सृजनात्मक शक्ति से सम्बन्धित है।[3] जो किसी एक नर साथी की अपेक्षा नहीं रखती है, पर उसी में यह नर तत्व विद्यमान रहता है। पुरुष तत्व से अधिकृत हो जाने के पश्चात् भी

---

१ हीरोइक प्योटरी, बॉवरा, पृ० ८२

२ प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, डा० जगदीश गुप्त, पृ० ४०८

३ मिथ आफ दि बर्थ आफ हीरो, पृ० २८

अपने 'आदि रूप' को सुरक्षित रखती है। हीरो का जन्म इसी आदि रूप नाय से सम्बंधित है जिसके रूप हैं, एक भयंकर (ड्रैगन) और दूसरे शुभ कल्याणमय रूप जो इस कौमार्य आदि रूप से गहरा सम्बंधित हैं। सूय ो का जन्म इसी शुभ महामाता के आदि रूप से सम्बंधित है जो पूर्व और त्चम के मिथकों मे समान रूप से प्राप्त होता है। मेरी, कुती और केडी- य ऐसी ही कुमारी माताएँ थी जिन्होंने सूर्य हीरो अथवा दिव्य शक्ति सम्पन्न यकों को जन्म दिया। इन हीरो का स्वरूप मूलत परामानवीय या अलौ- क होता था। इस प्रकार के हीरो के जन्म से माता एक अतरिक्त उल्लास अनुभव करती थी क्योकि उसने अपने से एक दिव्य परामानवीय व्यक्ति जन्म दिया है जो उसी का एक 'चमत्कार' था। यह चमत्कार एक प्रकार पूर्व सृजन है जो किसी देव या ईश्वर की अपेक्षा रखता है जो परामान- य शक्ति का प्रतीक है। यह 'नारी' की पराशक्ति है जो उसे 'महामाता' थवा 'पृथ्वीमाता' की सज्ञा प्रदान करती है। मिस्र म इसिस, जो पहले सिरिस को जीवन देती है और फिर वह दिव्य-देवता के द्वारा प्रजनन रती है। यह दिव्य-देवता अनेक अनुष्ठानो मे देव-सम्राट, के रूप म अव- रित होता है जिसका सम्बन्ध अनुष्ठानो मे उवराशक्ति के रूप मे है। यह ादि अवस्था मिस्र मे प्राप्त होती है।[1] आगे चल कर यह देव-सम्राट ही य-देवता के रूप म अवतरित होता है। हीरो के जन्म से इस सूय और वता का एक अभिन्न सम्बन्ध अग है जो आदिम मिथकों म सामान्य रूप से ाप्त होती है। लौकिक माता और अलौकिक देवता (प्रजनक) के ससर्ग से र्ण बुद्ध, जोराष्ट्र तथा परसियस आदि नायकों का जन्म 'महामाता' की सी सृजनशक्ति का रूप है। इन सब उदाहरणो से यह स्पष्ट होता है कि ायक के द्विविध रूप का एक अपना ऐतिहासिक महत्व है जो स्त्री के जन्म ने के अनुभव से सम्बंधित है। यह स्त्री का एक आध्यात्मिक बिम्ब है जो पने को 'स्वग' के लिए समर्पित करता है। इसके अनेक रूप है—एक ौमार्य का रूप है जो स्वर्गीय देवता से सम्पर्क करता है, एक तरुणी का रूप है जो देवता के प्रति आनन्द भावना से प्रेरित होती है और एक सोफिया का वह दुखपूर्ण रूप है जो दिव्य पुत्र या 'लागॉस' को जन्म देती है। यही कारण

---

१ मिथ ऐण्ड रिच्युअल्स इन एन्शेंट ईजिप्ट, क्लैकमैन, पृ० ४१

है कि हीरो या नायक का जीवन संघर्ष और दुःख का होता है
कृष्ण, ईशु या बुद्ध हो।

५ पिता बिम्ब और हीरो

इस प्रकार नायक का जन्म 'माता' के प्रजनन से है
पुरुष तत्व (पलिंग) की क्रमशः प्रधानता जो आगे चल कर,
आर्थिक दृष्टि से, स्त्री-तत्व की अपेक्षा, अधिक क्रियाशील
हो गया। यह पुरुष तत्व की 'अहं' चेतना का विकास कहा
अपनी शक्ति का क्रमशः साक्षात्कार करता है। यह पुरुष
रूप नहीं है, पर इसमें व्यक्तिगत पिता बिम्ब का हल्का सा सम
यह पिता ही 'समूह' का नेता हुआ और पुत्र से उसका संघर्ष
हुआ। यहाँ पर 'पिता' और 'पुत्र' समूह गुणों के वाचक शब्द
गत सम्बन्धों के शब्द। अधिक आयु वाले व्यक्ति 'पिता' हैं और
व्यक्ति 'पुत्र'। इनके मध्य जो संघर्ष प्राप्त होता है, वह आ
है और अपने मूल रूप में 'आदि रूपीय' प्रकृति के हैं। ये बड़े
वाले 'पिता' (वृद्ध) न्याय और व्यवस्था के संस्थापक हैं जो
से 'स्वर्ग' के प्रतिष्ठाता हैं।[1] यह 'स्वर्ग' की स्थिति नि
'माता-पृथ्वी' के विपरीत है। स्वर्ग और 'धरती' का यह 'युग
प्रतीकात्मक है जो 'आदि रूप' प्रकृति का माना जा सकता है
विकास क्रमशः आध्यात्मिक तत्व का जन्म दे सका जिसने पर
देवता' की कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ जो पुरुष-तत्व की
प्रधानता को घोषित करता है। यह स्वर्ग 'शक्ति-समूह' का प्र
जहाँ देवतागण, आत्माएँ, टोटमिक पशु और पूर्वजों (पितर) का
गया जो मिथकीय कल्पना का एक वास्तविक तथ्य है। जब मह
आध्यात्मिक 'स्वर्ग' से अवतरित माने गए जिन्हें स्वर्ग-दूत अथवा
संज्ञा दी गयी। यह एक प्रकार का आध्यात्मिक-जन्म है जि
पुरुष की अहं चेतना और इच्छा शक्ति से है। स्वर्ग और पुरुष
एक आधारभूत सह-सम्बन्ध जहाँ चेतना का ऊर्ध्व रूप, चेतन शा
सृजन का स्रोत है। यह एक प्रकार से उच्च एवं महान पुरुष त
रूप है जो दिव्य नायकों और महापुरुषों का जन्म दे सका। इस

---

१ एन्थ्रापोलाजी, गोरडन विजर, पृ० ४०८

रोचक तथ्य यह भी है कि सामान्यत सभी मानव संस्कृतियाँ चाहे वह ईसाई, यहूदी, ग्रीक, इस्लाम या भारतीय संस्कृति हो, सभी का स्वरूप मूलत पुरुष प्रधान है। इन सभी संस्कृतियो म 'नारी तत्व' अदृश्य प्रेरक तत्व है जो 'अचेतन' का स्वरूप है। इसका यह अर्थ नही है कि नारी तत्व के महत्त्व और क्षेत्र को नकारा गया है जो इस सन्दर्भ मे ध्वनित होता है। मेरे विचार से अनेक मनोवैज्ञानिको ने (युग तथा न्यूमॉन आदि) स्त्री तत्व का 'अचेतन' का रूप मान कर उसके उस प्रेरक एव आदि शक्ति के रूप का ही अर्थवत्ता प्रदान की है क्योकि नारी का सृजन तत्व ही वह आरम्भिक बिन्दु है जहा से नायक का, हीरो का, स्वर्ग दूत का, अवतार का जन्म होता है जो परोक्ष रूप से संस्कृतियो के विकास का केन्द्र और स्रोत है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि नायक या हीरो का जन्म और विकास 'महामाता' के आदि रूप को खण्डित कर, अपनी अह चेतना और इच्छा शक्ति को विस्तार देता है। आदिम समाजो मे आखेट और युद्ध का सम्बन्ध इसी पुरुष तत्व की क्रियाशीलता का सूचक है जो क्रमश 'पुरुषत्व' के अभिन्न अग के रूप मे मान्य हुआ। इस दशा मे भी पुरुष तत्व निरपेक्ष नही है, वह नारी-शक्ति से एक सापेक्ष स्थिति रखता है।[1] नेता या हीरो के रूप मे ही इस पुरुष तत्व का विकास नही हुआ, पर प्रजनक, सृष्टि देवता, पितृ तथा आदर्श पुरुष आदि आध्यात्मिक रूपो म हीरो का विकास सभी धर्मों और मिथको म प्राप्त होता है। नायक के ये सभी रूप (लौकिक और पारिलौकिक) इतिहास के उषाकाल की एक ऐसी घटना है जिसने मानव संस्कृति और सभ्यता के विकास म योगदान दिया। पितृ-देवता, जो समस्त वस्तुओ का निर्माता है, वह कालातीत है जो समस्त सृष्टि के पीछे विद्यमान एक परम 'शक्ति' का रूप है।

इस सृष्टिकर्त्ता 'प्रतिमा' से राजा का ईश्वरीय रूप प्रक्षेपित होता है जिसे 'ईश्वरीय राजा' की सज्ञा दी गयी है। नायक या हीरो यहाँ पर ईश्वर का पुत्र है, यदि 'वह' स्वय ईश्वर नही है। सांस्कृतिक नायक और सृष्टिकर्त्ता ईश्वर का एकीकरण इसी मानवीकरण प्रक्रिया का क्रमिक विकास है जिसने नायक के व्यापक स्वरूप का विकास किया। हीरो 'ईश्वर पुत्र' का प्रतिरूप माना गया जिसम 'स्वर्ग' की समस्त शक्तियो का समाहार हुआ। इस प्रकार 'वह' अपार शक्ति और ऐश्वर्य का प्रतीक बन गया जो ड्रैगन, राक्षस, असुर और अशुभ

---

१ दि आरिजिन ऐण्ड हिस्ट्री आफ दि कान्शेसनस, पृ० १४७

प्रवृत्तियों का दमन करने वाले नायक के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। मिथकों का यह नायक मुक्तिदाता, उद्धारक और सांस्कृतिक प्रगति का एक मूलस्रोत माना गया। ईश्वर-पुत्र से मानव-नायक की यह यात्रा एक तथ्य की ओर संकेत करती है कि नायक का पुनर्जन्म या 'अवतार' होता है, वह अहं, चेतना का एक प्रकार से ऐसा रूपान्तरण है जो सांस्कृतिक प्रक्रिया के एक अभिन्न 'तत्व' के रूप में प्राप्त होता है।

६ सूर्य और हीरो-मिथ

यहां पर एक महत्वपूर्ण तत्व की ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है। हीरो मिथ का यह 'आदिरूप' अक्सर सूर्य मिथ का रूप है, यही नहीं वह चन्द्र मिथ का भी रूप है। हीरो सूर्य है या चन्द्र इसका एकमात्र अर्थ यह है कि हीरो एक दिव्य एवं परम रूप है। सांसारिक या लौकिक रूप में 'वह' व्यक्तिगत पिता का पुत्र है, पर हीरो या नायक के रूप में वह ईश्वर का पुत्र है। मिस्री और हिन्दू आदि मिथकों में हीरो सूर्य का रूप है और मिस्र में उसे 'रा' (सूर्य) का पर्याय भी माना गया।[1]

७ हीरो का सांस्कृतिक रूप

हीरो के सम्बन्ध में यह द्विविधि पैतृकता का इमैन आदि मनो-विश्लेषकों ने 'हीरो के दो पिता होते हैं' के सिद्धान्त को मनुष्य की सीमित 'समझ' के परे माना है, पर यूंग ने इस सम्बन्ध में यह मत रखा है कि यह मानव प्रकृति का 'द्वैत' है जो जब भी किसी व्यक्ति को किसी एक का पुत्र मानता है, पर साथ ही, उसकी महानता के कारण उसे ईश्वर पुत्र या 'देवपुत्र' की संज्ञा देता है।[2] हीरो का यह 'विशिष्ट' और असाधारण' रूप मिथिक चेतना का एक ऐसा तत्व है जो क्रमशः प्रतीकात्मक रूप के जातीय मन का भी एक अभिन्न अंग बन गया। इस प्रकार हीरो-मिथ जहां व्यक्ति के अहं का विस्तार एवं विकास है, वहीं 'वह 'समूह और समष्टि की अस्मिता का एक प्रमुख तत्व है। दूसरे शब्दों में हीरो-मिथ व्यक्ति और 'समूह की आकांक्षाओं को जोड़ने वाला एक गतिशील स्वरूप है जो सांस्कृतिक चेतना का एक महत्वपूर्ण तत्व है।

---

१ मिथ ऐण्ड रिच्युअलिज्म इन एन्शंट ईजिप्ट, पृ० ५२

२ दि आरिजिन्स एण्ड हिस्ट्री आफ कान्शसनेस, पृ० १५०

हीरो या नायक के इस सांस्कृतिक स्वरूप के तीन प्रमुख अंग है—हीरो, ड्रैगन युद्ध और फल प्राप्ति (ट्रेजर)। ड्रैगन, राक्षस या अन्य प्रकार की अशुभ एवं व्यवधान डालने वाली शक्तियों पर विजय प्राप्त कर नायक फल की प्राप्ति करता है जो संघर्ष प्रक्रिया का 'अन्त' माना जा सकता है। युग ने इस ड्रैगन को पुरुष और नारी तत्व से एक साथ संयुक्त माना है और इसे आदि पैतृकता (माता-पिता) से भी जोड़ा है जिसमें हीरो माता और पिता दोनों की हत्या या अधिकार कर, उस ग्रंथि का परिचय देता है जिसे इडीपस ग्रंथि की संज्ञा दी गयी है। यह माता-पिता का सिद्धान्त जिसे फ्रायड ने अत्यधिक महत्व दिया, सम्पूर्ण मानवता और इतिहास की व्याख्या नहीं कर सकता है, यहां तक कि यह अपवाद मूलक सम्बन्ध ही कहा जा सकता है, एक सामान्य प्रवृत्ति नहीं। युग ने इसे एक व्यापक सन्दर्भ दिया और ड्रैगन-संघर्ष को अचेतन से जोड़कर 'लीबीडो' के विकास और रूपान्तरण की 'गति' का अधिकृत कर, माता ड्रैगन अथवा अचेतन की शक्ति का अपने बल से पराजित किया।[1] इस प्रकार ड्रैगन संघर्ष एक प्रकार से अचेतन से ही सबंधित किया गया और फलतः गुफा में प्रवेश, अपर संसार में प्रवेश तथा ड्रैगन द्वारा निगले जाने की प्रक्रिया (जो माता में गमन ही है) इन सबका सम्बन्ध हीरो मिथ से है। ड्रैगन द्वारा निगले जाने के पर्याय रात्रि, अंधकार, समुद्र तथा अपर संसार हैं जिन्हें भेद कर हीरो विजयी रूप में पुनः अवतीर्ण होता है। यह प्रक्रिया सूर्य मिथ के समकक्ष है जिसमें हीरो-मिथ सूर्य मिथ का रूप ग्रहण कर लेता है। जिस प्रकार सूर्य अंधकार को भेद कर विजयी रूप में पुनः उदय होता है, उसी प्रकार हीरो भी 'ड्रैगन' में प्रवेश कर, उस पर विजय प्राप्त कर 'हीरो' के रूप में अवतरित होता है। अहं चेतना और अचेतन का यह द्वन्द्व हीरो मिथ का स्रोत है जो नित्य और अनादि है। यही शुभ-अशुभ, देव-असुर और सद्-असद् का चिरंतन-संघर्ष है जो बाह्य रूप भी ग्रहण करता है। यहाँ पर यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि ड्रैगन का संघर्ष एक प्रकार से पुरुष का नारी के प्रति एक 'भय' है जिसे वह इस द्वन्द्व के द्वारा प्रकट करता है। यही 'माता' की शक्ति है जिसे 'हीरो' अपने अधिकार में करना चाहता है। माता, गर्भाशय, गह्वर, खाईं, नरक और समुद्र—ये सभी ड्रैगन या अचेतन के पर्याय हैं, जिन पर हीरो (अहं चेतना) विजय प्राप्त करता है। यह एक प्रकार से उच्च या ऊर्ध्व 'पुरुषत्व' का प्रतीक है जो उसके लिंगीय रूप से महान और

---

१ साइकालाजी आफ दि अनकान्शेस, युग

पवित्र है। हीरो का उच्च रूप इसी तथ्य पर आधारित है जो मिथकीय कल्पना होते हुए भी नायक के सांस्कृतिक महत्व पर प्रकाश डालती है। पुरुषत्व की सार्थकता इन दोनों स्तरों का एकीभूत गम्भार है जो हम अनेक मिथकों म प्राप्त होता है। 'पुरुषत्व' का यह रूप हम सैमसन, प्रोमीथियस, भीम, हनुमान, राम, कृष्ण, जीहोवा आदि म प्राप्त होता है। हीरो की यह विजय एक नए आध्यात्मिक स्तर का उद्घाटित करती है, नए प्रकार के ज्ञान और अचेतन के विकास को प्रकट करती है।

८ पिता बिम्ब का अर्थ और हीरो मिथ

हीरो मिथ मे जहाँ एक ओर 'माता' से ससर्ग और उस पर विजय (ड्रैगन रूप) प्राप्त करने का एक प्रतीकात्मक अर्थ है, वही पिता की हत्या और उस पर अधिकार करने का प्रसग भी हीरो मिथ म एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इडीपस ग्रन्थि मे पिता, माता के ससग मे सहायक सिद्ध होता है, पर फिर भी नायक या हीरो के द्वारा उसकी मृत्यु को दिखलाया गया है जो पिता के आदिरूप की गतिशीलता को व्यक्त करता है। माता के समान पिता के भी दो रूप हैं—एक सकारात्मक और दूसरा नकारात्मक—जो आज के मानव म उसी प्रकार जीवित है जिस प्रकार वे मिथकों म अपनी सत्ता बनाए हुए हैं। जैसाकि सकेत किया जा चुका है कि पिता 'वृद्धा का प्रतीक' है जो व्यवस्था प्रदान करता है (स्वर्ग का रूप)[1] और इस प्रकार, मिथकों का ईश्वर यही 'पिता' रूप है जिसम सभी पिता बिम्ब समाहित हो जाते हैं। यही पिता का अतिवैयक्तिक रूप है ये पिता ही आज के न्याय और व्यवस्था के आदिस्रोत हैं हीरो इन पिताओं को पुरानी और जर्जरित व्यवस्था का विरोध करता है, पुराने मूल्यो को चुनौती देता है तथा नयी व्यवस्था और मूल्यो को स्थापित करता है। यह क्रम एक निरन्तर क्रम है जो इतिहास की गतिशील प्रक्रिया का एक अभिन्न अग है। इस विरोध और सघष म व्यक्तिगत पिता बिम्ब बाधा उत्पन्न करता है, पर अतिवैयक्तिक पिता-बिम्ब स्थापित व्यवस्था और मूल्य का बदलने के लिए प्रेरित करता है। हीरो इसी 'अतिपिताबिम्ब' स प्रेरित हो कर्म करता ह और व्यक्तिगत पिता बिम्ब स उसका सघष होता है। यह सघर्ष बाइबिल मे दिये गए जीहोवा के उस आदेश से स्पष्ट होता है जिसे वह अब्राहम को देता है, 'तुम अपने सगे सम्बन्धियो और अपने देश से बाहर आओ, और अपने पिता

---

१ इस पक्ष का सकेत पीछे के पृष्ठा मे दिया जा चुका है।

घर से बाहर निकलो, मैं तुम्हे इस दृश्य जगत से परे लोक म ले जाऊँगा।[1]
[इसी 'परे लोक' के लक्ष्य की ओर सकेत करता है और पिता के देवो से
र्ष करता है। बुद्ध, राम और ईशु इसी सघर्ष को प्रतीकात्मक रूप स व्यक्त
ते है और मानव मन को आध्यात्मिक लाक की आर गतिशील करत है।
रू मिथको म स्थिति विपरीत भी है जहा पर व्यक्तिगत पिता 'अमरान'
यक का पक्षधर है और रामकथा मे दशरथ की भी यही स्थिति है, पर दय-
य अवस्था म। व्यक्तिगत पिता का यह बिम्ब 'नायकवाद' को जन्म देता है
ोकि पिता की हत्या या उस पर विजय प्राप्त कर नायक या हीरो अपने
रूपपूर्ण अस्तित्व की घोषणा करता है।

नायक का यह वीर रूप व्यक्तिगत पिता सम्राट की प्रेरणा से नायक को
मकाय राक्षसा, दैत्या, भयकर जीवधारियो तथा पिशाच पिशाचिनियो स
र्ष के लिए प्रस्तुत करता है और अपन अतिव्यक्तिगत पिना (दिव्य पिता)
: प्रेरणा से वह इन असद् शक्तियो पर विजय प्राप्त करता है। हीरो का यह
उस समय और जटिल तथा महत्वपूर्ण हा जाता है, जब वह दवता और
क्तिगन पिता के बिम्ब से मुक्त हो, अपने को स्वतन्त्र आधुनिक मानव
क्तित्व के रूप म अवतरित करता है। इसका सुन्दर उदाहरण प्रोमीथियस
ख्यान है जा स्वग से अग्नि को मानव जाति के लिए चुराकर लाता है।
सरा उदाहरण आदम और हौवा (सर्प सहित) का है जा हीरो के रूप मे
नवता को नवीन चेतना और ज्ञान देता है। इसके अतिरिक्त वहा नये पितृ
ता का पुत्र भी है जो पुरानी व्यवस्था से सघर्ष करता है।

इस प्रकार भयानक महामाता के समान भयानक पिता का आदि रूप भी
क सत्य है जिस पर हीरा विजय प्राप्त कर या उसका उन्मूलन कर अपो
भीष्ट की प्राप्ति करता है। यह भयकर पिता का रूप एक ऐसी शक्ति है जो
ह चेतना के शुभ विकास मे बाधा उपस्थित करता ह। हीरो का अति या
रावैयक्तिक पिता बिम्ब ही उस आध्यात्मिक प्रगति, किसी नय मूल्य तथा
सी नये विचार की आर, प्रेरित करता ह। हीरा का यह पक्ष पिता बिम्ब
ही सम्बन्धित है न कि माता बिम्ब से। इस प्रकार सामूहिक आध्यात्मिक
क्तियो और सामूहिक भौतिक प्रवृत्ति मूलक शक्तियो का सघर्ष एक सत्य है जा
ता तथा माता के आदिरूपा के द्वारा प्रकट होता है और नायक या हीरा इस

जेनिसिस १२ १।

सघर्ष के मध्य मे अपने 'अह चेतना' का शुभ विकास करता है। इस विकास के द्वारा अह (हीरो) अपने 'व्यक्तित्व' का विकास करता है जो अन्य लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत होता है।

९ 'बन्दी' और 'निधि' के अर्थ

हीरो-मिथ के सन्दर्भ मे माता और पिता बिम्ब से संघष और अन्त म, हीरो का गन्तव्य तक पहुँचना और तदनुसार 'बन्दी' या 'निधि' को स्वतन्त्र और प्राप्त करना—ये तीना प्रक्रियाएँ हीरो के बहुमुखी विकास के सोपान हैं जो मिथकीय प्रकल्पना का अभिन्न और आवश्यक अग हैं। 'बन्दी' और निधि शब्दा का अर्थ नितान्त साकेतिक और व्यजनात्मक है। बन्दी कोई भी प्रेमिका या कुमारी हो सकती है जो किसी दैत्य, राक्षस या अशुभ तत्व के द्वारा बन्दी कर ली गयी है और हीरो, अपने पौरुष और वीरता से उसे मुक्त करता है। जहाँ तक 'निधि' का प्रश्न है, वह अनेक अर्थों का वाचक है। स्वर्ण, हीरा, मोती तथा अन्य बहुमूल्य पदार्थ इसके अन्तगत आते हैं जो मूलत अमर 'मूल्यो' के प्रतीक हैं।[1] इसी प्रकार 'जीवन जल अमृत, अमर पौदा, दाशनिक का पाषाण, रहस्यमय अँगूठिया तथा परयुक्त घडिया आदि निधि के ही प्रतीक है जो मिथको, परी कथाओ, अनुष्ठाना, धर्मों, काव्यो और रहस्यवादी साहित्य म अपने व्यजनात्मक अर्थ को सुरक्षित किये हुए है। ये सभी पदार्थ, जहाँ तक मिथको का सम्बन्ध है, विषयगत या वस्तुगत अर्थ देते हैं, तो दूसरी ओर वे विषयीगत या आध्यात्मिक अर्थ देते हैं। ये दोनो ही अर्थ महत्वपूर्ण और सार्थक हैं क्योकि उनके द्वारा मिथ के अर्थ का विस्तार होता है और साथ ही, मिथ की गतिशीलता का परिचय भी प्राप्त होता है।

१० रूपान्तरण मिथका का रूप

इस अन्तिम अवस्था मे जहा 'हीरो' मुक्तदाता के रूप मे अवतरित होता है अथवा 'बन्दी' को मुक्त करता है—ऐसी अवस्था म वह स्वय भी रूपान्तरित होता है और दूसरा को भी रूपान्तरित करता है। इन्हे ही रूपान्तरण-मिथका की सज्ञा दी गयी है। इन रूपान्तरण मिथको का महत्व सामाजिक एव सास्कृतिक भी है जो मानवीय चेतना को गतिशीलता देते हैं और साथ ही, व्यक्ति और समूह के ऊर्ध्वगामी विकास को रेखाकित करते हैं।

---

१ साइकालॉजी ऐण्ड एलकैमी, युग, पृ० ६०-६१

जैसाकि यहा गया है कि 'बन्दी' और 'निधि' का एक अपना साकेतिक अर्थ है जो वस्तुपरक और विपर्यगत अर्थों को प्रकट करते हैं। वस्तुगत रूप म बन्दी एक वास्तविक जीवित स्त्री है जो पुरुष और स्त्री के सम्बन्ध को रेखान्कित करती है। दूसरी ओर स्त्री का यह रूप वस्तुगत क्षेत्र का अतिक्रमण कर, परावैयक्तिक बिम्ब को प्रकट करती है जो मूलत सामूहिक-मनस का रूप है जो मानवता मे अतर्व्याप्त है। इस अर्थ म क्रमश 'बन्दी' का रूपान्तरण होता है और वह आतरिक तत्व या 'आत्मा' के रूप म सामने आती है। अनेक मिथक इस 'आत्मा' और पुरुष 'अह' के सम्बन्ध का व्यजित करते हैं और सघर्ष के द्वारा पुरुष इस आतरिक तत्व या आत्मा को मुक्त करता है। इसका यह अर्थ हुआ कि नारी और पुरुष का सम्बन्ध अभ्यातरिक है और साथ ही, मनस पृष्ठभूमि मे इन घटनाओ का घटित होना मिथकीय प्रतीकवाद का एक ऐसा स्रोत है जो सास्कृतिक चेतना के विविध रूपो मे व्यक्त होता है। यह परालौकिक सम्बन्ध एक प्रकार स आध्यात्मिक प्रतीको को भी जन्म देता है जो धर्म और पुराणो मे, रहस्यवादी सम्प्रदायो मे, लोकगाथाओ मे तथा सृजनात्मक अभिप्रायो के द्वारा प्राप्त होता है। ये आन्तरिक घटनाएँ ही बाह्य रूप ग्रहण करती हैं जो वस्तुओ के द्वारा आकार ग्रहण करती हैं। इस प्रकार मिथिक चेतना अतर और बाह्य को एक सूत्र म बाधत है अथवा अनेक विचारको का मत है कि मिथ जो आतरिक घटनाओ को प्रकट करते है, वे ही बाह्य रूपाकार ग्रहण करते हैं। अतर का सघर्ष ही बाह्य सघर्ष को जन्म देता है। अतर और बाह्य का यह सवाद एक नित्य घटना है जो मिथकीय चरित्र की होते हुए भी यथार्थ और वास्तविकता से गहरी जुडी हुई है। मिथ का वस्तुगत और विपर्यगत विवेचन मिथ के भौतिक और अतिभौतिक (या अतिवैयक्तिक) स्वरूपो को एक साथ चरितार्थ करते हैं और यही कारण है कि हीरो मिथ (या अन्य कोई) केवल व्यक्ति का एकातिक इतिहास नही है, पर वह समूह या जाति की अति वैयक्तिक या परावैयक्तिक सामूहिक घटना है जो अचेतन म गहरी पैठी रहती है। हीरो जब ड्रैगन या राक्षस पर विजय प्राप्त करता है, तो यह घटना अतिवैयक्तिक स्वरूप की है जो स्वय हीरो म घटित हो रही है।[1] हीरो का यह रूप सारी मानवता की धरोहर है क्योंकि वह जाति के चिन्तन म, विचार मे, उसके अनुभव बन्ध मे तथा पुन-पुन विवेचित होने मे रूपान्तरित होती रहती है।

---

१ दि आरिजिन्स ऐण्ड हिस्ट्री आफ काशेसनेस, न्यूमान, पृ० १८७

११ 'वन्दी' बिम्ब और हीरो-मिथ

अनेक मिथको म हीरो के सघर्ष का गन्तव्य 'वन्दी' को राक्षस या दैत्य से मुक्त कराना है। यह 'दैत्य' एक आदिरूप है जिसके अनेक रूपान्तरण प्राप्त होते हैं—कही वह ड्रगन है, कही तान्त्रिक है, कही चुडैल है तो कही व्यक्तिगत क्रूर माता व पिता के बिम्ब हैं। अन्त म, वन्दी (जो प्रेमिका का रूप में) सदैव हीरो से विवाह बन्धन मे बँध जाती है और यह तथ्य ससार भर के मिथको म एक सामान्य प्रवृत्ति है। प्रतीकात्मक रूप मे हीरो की यह विजय, यातुक रीति से उर्वरा अनुष्ठानो मे भी प्राप्त होती है जहाँ तरुण हीरो-सम्राट का मिलन पृथ्वी माता या देवी से होता है। हीरो की वन्दी पर यह विजय इसी यातुक उर्वरा अनुष्ठान का प्रतीकात्मक रूप है। यह तथ्य हीरो मिथ को एक सामाजिक एव आर्थिक सन्दर्भ प्रदान करता है जिसे फ्रेजर, मैलीनावस्की आदि विचारको ने महत्व प्रदान किया है। हीरो का यह 'मुक्तिदाता' रूप पुरुष की चेतना का और उसकी शक्ति का और अधिक विस्तार है जिसका आरम्भ ड्रैगन सघर्ष और भयानक माता सघर्ष से हुआ है। इस प्रकार हीरो एक गतिशील व्यक्तित्व है जो सामूहिक महत्व का तथा परावैयक्तिक अर्थवत्ता का बिम्ब है। इस प्रकार स्त्री और पुरुष का यह मिलन अन्तत हीरो का एक पारिवारिक अर्थवत्ता देता है जो पितृ सत्ता-युग के विकास मे एक प्रेरक तत्व माना जा सकता है। स्त्री के पक्ष म एक तथ्य यह भी प्रकट होता है कि महामाता का जो प्रभुत्व अभी तक था जिसके द्वारा नारी शक्ति का अनुभव होता था, वह प्रभुत्व एक प्रकार से समाप्त हो गया। 'बन्दी' का रूप नारी के उस पक्ष की ओर सकेत करता है जहाँ वह मानवीय रूप म अवतरित होती है और सगिनी का रूप धारण करती है जिससे पुरुष किसी भी समय प्रेम बन्धन म बँध सकता है। नारी (बन्दी) इस समय पुरुष के पौरुष और साहस की ओर आकृष्ट होती है, अब पुरुष नारी के लिए केवल लिंग धारण करने वाला प्राणी नही है, पर सही अर्थ म आध्यात्मिक एव शारीरिक शक्तियो से युक्त 'हीरो' का स्वरूप है।

बहुत से पुराणो और मिथको म बन्दी का एक अन्य रूप भी प्राप्त होता है जो ड्रैगन सघर्ष और राक्षस सघर्ष म हीरो की सहायता देती है और इस प्रकार एक सहयोगी मित्र की तरह हीरो को शक्ति प्रदान करती है। इस सन्दर्भ म मीडिया, एथीन, कैकेयी, सीता और इसिस आदि के ना[illegible] आ[illegible]
जिन्होने हीरो को किसी न किसी रूप मे सघर्ष म [illegible] । ना[illegible]
के इस रूप का पुरुष अपने 'अह' और 'चेतना' मे [illegible] औ[illegible]

केवल उसके यौन सम्बन्ध तक ही सीमित नहीं रहता है। नारी का यह रूप उसके माता रूप से भिन्न है, यहाँ पर उसका अपना व्यक्तित्व है, वह एक आध्यात्मिक शक्ति है जो माता के सामूहिक पक्ष से नितान्त अलग है।[1] नारी का यह 'बहन' के समान सहायता देने वाला रूप पुरुष और नारी के सम्बन्ध को एक नया आयाम देता है जहाँ नारी स्वतन्त्र रूप से अहं चेतस प्राणी है और इस दृष्टि से वह हीरो या नायक के समान एवं अहं से युक्त शक्ति का प्रेरणा स्रोत है। हीरो उसकी सहायता से संसार से एक जीवत सम्बन्ध स्थापित करता है।

नारी का यह रूप अनीमा तत्व का विकास कहा जा सकता है जिसकी 'छाया' पुरुष में रहती है और इस प्रकार पुरुष या हीरो 'अनीमा' बिम्ब का अनेक रूपों में साक्षात्कार करता है। इस प्रकार हीरो का 'बन्दी' को मुक्त कराना, एक प्रकार से मनस जगत का अनुसंधान है। यह जगत् अत्यन्त विस्तृत है जिसे काम रति का जगत कह सकते हैं (ग्रीक मिथकों में इसे उरास की संज्ञा दी गयी है) जिसमें स्त्री और पुरुष का अपना सापेक्ष महत्व है, वह केवल पुरुष का अनुभव और नारी के प्रति उसके बिम्ब का सूचक मात्र नहीं है[2] जैसाकि न्यूमान, युग तथा अन्य विचारकों का मत है। मिथक, काव्य, नाटक और अन्य सृजनात्मक कलाओं में हीरो और बन्दी के सम्बन्ध में रूपान्तरण के अनेक आयाम प्राप्त होते हैं, यही नहीं इतिहास और संस्कृति की अनेक महान घटनाएँ स्त्री पुरुष के इस सम्बन्ध की गाथा कहती हैं। 'बन्दी' की यह मुक्ति एक अन्य तथ्य की ओर संकेत करती है कि नारी की अचेतन शक्ति जो पुरुष तत्व की विरोधी एवं शत्रु रही है, 'वह' पुरुष के 'अहं' और व्यक्तित्व से एक मित्रता की सन्धि करती प्रतीत होती है। यह तथ्य एक अन्य तत्व की ओर संकेत करता है कि नारी और पुरुष का द्वन्द्व एक सीमा पर आकर 'समरसता' की भी सृष्टि करता है जहाँ 'मैं' और 'तुम' की सीमाएँ विलीन होने लगती हैं। यह पुरुष और नारी सम्बन्ध का आध्यात्मिक पक्ष है जो धर्मों, पुराणों और काव्यों में दृष्टिगत होता है।

१२ बन्दी, निधि और हीरो का सापेक्ष तात्त्विक रूपान्तरण

बन्दी का सम्बन्ध निधि से है जिसे प्राप्त करना एक कठिन कार्य है और

---

१ साइकालाजी आफ दि ट्रांसफेरेन्स, युग, पृ० ४८

२ दि ओरिजिन्स ऐण्ड हिस्ट्री आफ कान्शसनेस, पृ० २०४

यह तथ्य बन्दी के स्वरूप का प्रकट करता है। दूसरे शब्दों में बन्दी स्वयं ही निधि है अथवा वह किसी न किसी रूप से उससे सम्बन्धित है। इस निधि का गुण यातुक प्रकार का है, उसे प्राप्त करने वाला व्यक्ति अपनी इच्छाओं की पूर्ति, अदृश्य होने, तन्त्र-मन्त्र करने, अपने स्वरूप को बदलने, दिक और काल को अतिक्रांत करने की शक्तियाँ प्राप्त कर लेता है। यह तथ्य इस बात की ओर संकेत करता है कि आदिम मानव अचेतन की शक्तियों का अधिकृत करने के लिए इन यातुक अनुष्ठानों का करता था, पर आगे चल कर इनका सम्बन्ध मानव की आन्तरिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों से हो गया। ये मनस की सृजनात्मक शक्तियाँ जहाँ एक ओर ब्रह्माण्ड को जानने के लिए प्रक्षेपित हुईं वहीं वे अब मानव व्यक्तित्व के अनुभव और ज्ञान के लिए, उसकी आत्मिक शक्ति को मुखर करने के लिए प्रयुक्त होने लगी। 'बन्दी और निधि' की प्राप्ति से हीरो अपनी 'आत्मा' की निधि को प्राप्त करता है जो व्यक्ति की सम्भावनाओं की ओर संकेत करता है और साथ ही 'है' और 'चाहिए' के मध्य में 'सेतु' का काम करता है। हीरो का कार्य इन सुप्त बिम्बों को जाग्रत करना है जो अंधकार और अज्ञान से उद्भूत होती है और उनसे गुजर कर एक 'प्रकाश पुंज' की सम्भावना का प्रकट करना है। हीरो, बन्दी और निधि—इन सबका एक तात्विक रूपान्तरण मिथकीय चेतना में प्राप्त होता है। सभी संस्कृतियों का लक्ष्य, इसी सुप्त जगत को रूपान्तरित कर एक चेतन-प्रकाश-जगत की ओर संकेत करना है। यह एक प्रकार की मानवीय सृजन-शक्ति का सूचक है जो केवल मिथकों और धर्मों में ही नहीं, पर कला, साहित्य, विज्ञान, इतिहास आदि मानवीय क्रियाओं में एक आवश्यक एवं अभिन्न अंग है। आत्मा की यह स्वयंभू शक्ति मानव का सत्य और उसका आन्तरिक रहस्य है जिसके द्वारा वह 'ईश्वर' का बिम्ब रूप माना गया और इस दृष्टि से, उसका अन्य जीव-धारियों से विशिष्ट स्थान है जो उसे 'होमो सिम्बालिक्स' (विवेकशील प्रतीक निर्माता प्राणी) की संज्ञा प्रदान करता है। मानव की इस सृजनात्मक शक्ति का रूपान्तरण कलाकार, साहित्यकार, वैज्ञानिक, महात्मा और विचारक में होता है और इस दृष्टि से एक व्यापक सन्दर्भ में ये सभी 'हीरो' कहे जा सकते है। आधुनिक सन्दर्भ में 'हीरो' की अवधारणा का यह विकास ही कहा जा सकता है।

हीरो का उपर्युक्त सांस्कृतिक स्वरूप एक अन्य तथ्य की ओर संकेत करता है कि इस सांस्कृतिक रूपान्तरण की प्रक्रिया में वह केवल बाह्य तथा अन्तर का ही रूपान्तरण नहीं करता है, पर उसका लक्ष्य आत्म रूपान्तरण या

साक्षात्कार है जो अधिक उच्च मानवीय मूल्य है जो केवल 'समूह' तक सीमित नही है, पर वह एक प्रकार से, मानव मनस का वह केन्द्रीभूत रूप है जो आत्म निर्माण और आत्म साक्षात्कार को गति देता है। व्यक्तित्व का यह निमाण (आत्म रूपान्तरण) अनेक मिथको मे प्राप्त होता है जहा मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की अकाट्य लालसा प्राप्त होती है। मृत्यु एक ऐसी आदि शक्ति और प्रतीक है जो मानव व्यक्तित्व और उसकी शक्तिया का हनन और विजय कर लेती है। मृत्यु के इस भय ने ससार के अनेक धर्मों और मिथको मे मृत्यु पर विजय प्राप्त करने और साथ ही, मानव की अमर तथा मृत्युजय होने की लालसा ने अनेक प्रतीको, बिम्बो और धारणाओ को जन्म दिया। प्राचीन मिस्र के राजा को अमरत्व का प्रतीक मानना, पूर्वजो की उपासना, आत्मा की अमरता और नित्यता, मृत्यु से परे 'जीवन' की कल्पना (स्वर्ग, नरक आदि) आदि ऐसी मान्यताएँ हैं जो हम ससार के सभी मुख्य धर्मों म प्राप्त होती हैं। मिस्री मिथको म 'ओसीरिस' का मिथक इसी प्रकार का है जो व्यक्तित्व रूपान्तरण को समक्ष रखता है और साथ ही ड्रेगन सघर्ष के द्वारा हीरो-मिथ को एक ऐसा आयाम देता है जो ओसीरिस को प्रतिभा को आध्यात्मिक ऊर्जा का प्रतीक बना देता है।[१] मिस्र का एक अन्य देवता 'एडोनिस' है जो मर कर पुनर्जीवित होता है, और इस प्रकार वह सदैव जीवित रहता है। 'ओसीरिस' केवल 'उर्वरा देवता' ही नही है जैसा कि फ्रेजर का मत है,[२] पर वह निम्न उर्वरा स्तर को अतिक्रात करता ह और अन्तत उच्च आध्यात्मिक शक्ति का प्रतीक बन जाता है। हिन्दू विचारधारा म नचिकेता, सावित्री और युधिष्ठिर का भी यही रूप है जो मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं और उच्च आध्यात्मिक शक्ति का परिचय देते हैं।

ओसीरिस का यह रूपान्तरण सूर्य (रा) को भी अपने अन्दर समाहित कर लेता है और मिस्री मिथको मे सूर्य और ओसीरिस पर्यायवाची शब्द है। यही नही, 'ओसीरिस एक स्वयभू आध्यात्मिक शक्ति है जो 'आत्मा शरीर' के एकीभूत सस्कार का फल है। ओसीरिस मे फिर से उत्पन्न होने की शक्ति है, वह एक ऐसी दिव्यात्मा ह जिसने देवताओ का सृजन किया।[३] 'वह ही

---

१ पैरामिड टेक्ट्स से उद्धृत। इसी अमरता को 'ममी' के द्वारा व्यक्त किया गया।

२ गोल्डेन बो, फ्रेजर, पृ० २३४

३ दि आरिजिन ऐण्ड हिस्ट्री आफ कान्शसनस, पृ० २३७-२३८

भूत, वर्तमान और भविष्य है, सभी कुछ 'उसी' से उद्भूत एवं विकसित हुआ है। ओसीरिस का यह रूप एक ऐसी मिथकीय धारणा है जो हमें कृष्ण के विराट रूप में तथा ब्रह्म की अवधारणा में प्राप्त होता है। यह समानता इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि विभिन्न संस्कृतियों की संरचना में यह मिथकीय बोध की समानता मानव मनस की समान सार्वभौम प्रक्रिया का सूचक है। यह प्रक्रिया रूपान्तरण की प्रक्रिया है जो आदिम मानसिकता से लेकर आधुनिक मानसिकता तक किसी न किसी रूप में प्राप्त होती है। यह रूपान्तरण मानव व्यक्तित्व और चरित्र का एक ऐसा रूपान्तरण है जो मानव इतिहास की एक अभिन्न घटना है।

□ □

१० | आधुनिक मिथक

१ ऐतिहासिक परिवर्तन और आधुनिक मिथक

पूर्व विवेचित अध्यायो म प्रसगवश आधुनिक मिथको के बारे म यदा-कदा सकेत किया गया है जो यह तथ्य प्रकट करता है कि मिथ एक गतिशील प्रक्रिया है जो केवल आदिम ही नही है, पर सार्वकालिक है। मानसिक एव सामाजिक विकास की दृष्टि से यह कहना भी सत्य है कि मिथक का उद्गम एव विकास आदिम मानसिकता से सम्बधित होते हुए भी वही तक सीमित नही है, उसका स्वरूप और विकास ऐतिहासिक और सास्कृतिक प्रक्रिया मे एक गतिशील स्वरूप है। मिथ सृजन के अतराल म यह गतिशीलता प्राप्त होती है जो मानव मन के विकास के साथ अपने स्वरूप को तथा अपनी अर्थवत्ता को रेखाकित करती है।

यह गतिशीलता एक ऐतिहासिक गतिशीलता है जिस पर विचार करना आवश्यक है। प्रत्येक ऐतिहासिक परिवतन अपने मिथक या 'पुरागाथा' की कल्पना करता है। आदिम मिथको म भी इसी ऐतिहासिक परिवतन का स्वरूप लक्षित होता है जो प्रागतार्किक मानसिकता से सम्बधित माना गया है।[१] इसी प्रकार, जब हम आधुनिक मिथको की बात करते है तो उसमे भी ऐतिहासिक परिवतन की प्रासगिकता स्वय स्पष्ट है। इसी सदर्भ म यह भी कहा जा सकता है कि यह परिवर्तन नए विश्वासो तथा ज्ञान के नए क्षितिजो के साथ नए मिथको का निमाण करता है और युग की माँग के अनुसार पुराने मिथको का पुनर्विवचन एव नया रूपातरण करता है। समाजशास्त्रीय विचारको म मैलीनोवस्की का मत है कि किसी भी विश्वास, रीति या अनुष्ठान के बदल जाने पर उसमे सम्बधित मिथक भी समाप्त हो जाता है।[२] यह मत अपने म एकागी है या अपूर्ण है। इसका कारण यह है कि प्राचीन या पुराने मिथक, विश्वास या रीति के बदल जाने पर भी जाति के अचेतन मे ही गहरे पैठे नही रहते हैं, पर वे जाति की चेतना को भी बराबर आदोलित एव प्रेरित करत

---

१ ऐन एसे ऑन मैन, अर्नेस्ट कैसिरर, पृ० ८०

२ लोक साहित्य और सस्कृति, डा० दिनेश्वर प्रसाद, पृ० ३१

रहते हैं। अधिक से अधिक इतना कहा जा सकता है कि वे ही मिथ संदर्भहीन या अर्थहीन हो जाते हैं जो नए सन्दर्भों तथा युगीन रूपान्तरण से सर्वथा कट जाते हैं। इसे ही, दूसरे शब्दों मे 'लोच शक्ति' की संज्ञा दी जा सकती है जो मिथक की रूपान्तरण शक्ति का स्रोत कहा जा सकता है। हीरो मिथ, देवासुर संग्राम, ईशु, कृष्ण तथा राम आदि के मिथकों मे यही 'लोच शक्ति' है जो उन्हें अभी तक किसी न किसी रूप में जीवित किये हुए हैं। इसी परिप्रेक्ष्य मे मिथक का एक अपना सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व होता है जो उसे किसी भी जाति का यहाँ तक कि मानवता का 'जीवित स्वप्न' ही बना देता है।

२ आधुनिक मिथक का स्वरूप

अतः उपर्युक्त विवेचन को ध्यान में रखकर आधुनिक मिथक के स्वरूप पर विचार करना अपेक्षित है। आधुनिक मिथकों का स्वरूप आदिम या प्राचीन मिथकों की अपेक्षा प्रत्ययात्मक या अवधारणात्मक अधिक है। इस दृष्टि से आज के मिथकों को 'धारणाकृत मिथकों' की संज्ञा दी जाती है। इतिहास, विज्ञान, दर्शन और कला साहित्य आदि ज्ञान क्षेत्रों के मिथक इसी कोटि में आते हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि आज के मिथकों मे प्राचीन मिथकों के समान संवेदनात्मक और उत्तेजनात्मक तत्वों का अभाव है, पर यह भी सत्य है कि इनमे अपेक्षाकृत मात्रात्मक अन्तर तो अवश्य है। इसके अतिरिक्त दूसरा तत्व 'फिक्शन' या वह चतुर्दिक 'आलोक-मंडल' है जो किसी वस्तु या धारणा (व्यक्ति भी) को चारों ओर से गुम्फित या आवेष्टित कर लेता है, और क्रमशः काल के दीर्घ आयाम में उसे एक 'अर्थवत्ता' या 'दिव्यता' प्रदान कर देता है। मिथक निर्माण की प्रक्रिया में यह चतुर्दिक प्रभामण्डल एक आवश्यक तत्व है जो प्राचीन मिथकों के 'इतिवृत्त' का एक अधिक बदला हुआ सूक्ष्म और व्यापक स्वरूप है। यहाँ पर जो दिव्यता का संकेत किया गया है, उसका अर्थ 'अलौकिक' नहीं है जो प्राचीन या आदिम मिथकों का एक आवश्यक तत्व रहा है। यह दिव्यता उसके अलौकिक अर्थ में नहीं, पर उसके अवधारणात्मक एवं संवेदनात्मक तत्वों के समाहार मे है। यही कारण है कि आज के मिथकों मे वह इतिवृत्त या कथांश के दर्शन उस रूप मे नहीं होते हैं जिससे कि प्राचीन मिथकों को पहचाना जाता था। मैं समझता हूँ कि यह मिथक का नया अर्थ रूपान्तरण है जो उसे एक स्थिर एवं रूढ़ अर्थ के जटिल बन्ध से मुक्त भी करता है और साथ ही मिथ के व्यापक अर्थ-संदर्भ को रेखांकित करता है। मिथक चेतना के सन्दर्भ में यह 'प्रभा मंडल' एक

आवश्यक तत्व हैं जिसके बगैर मिथ का अस्तित्व कदाचित माना नही जा सकता है। इसी तत्व के आधार पर प्रतीक, रूपक और बिम्ब से मिथक की सत्ता एक स्वतन्त्र सत्ता है, और उसका अस्तित्व सार्वकालिक और सार्वभौम है।

आधुनिक मिथको के स्वरूप का हृदयगम करने के लिए उसके ज्ञानात्मक या अवधारणात्मक रूप का समझना आवश्यक है। मिथक और ज्ञान के गत्यात्मक रूप का एक सापेक्ष और गहरा सम्बन्ध है। ज्ञान एक सतत् गत्यात्मक प्रक्रिया है जो एक ओर व्यक्तित्व को रूपान्तरित करती है, तो दूसरी ओर, स्वय भी रूपान्तरित होती है। आज के परिप्रेक्ष्य मे यह बात ध्यान देने योग्य है कि आधुनिक मिथिक चेतना का इस गत्यात्मक ज्ञान से अभिन्न सम्बन्ध है। यही कारण है कि कैसिरर ने ज्ञान मीमासा के अन्तगत तर्क के साथ-साथ मिथक और प्रतीक को आवश्यक माना है। इसी के आधार पर दो प्रकार की समानान्तर मानसिक प्रक्रियाओ को माना गया है पहली मिथिक चेतना और दूसरी दार्शनिक चेतना।[1] यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाएँ तो पहली प्रक्रिया (मिथिक) सघनन और सश्लेषण की क्रिया है और दूसरी विश्लेषणात्मक एव विवेचनात्मक प्रक्रिया है। असल मे भाषा मे ये दोनो प्रक्रियाएँ एक साथ चलती हैं। यही नही, भाषा मे और उसमे प्रयुक्त प्रतीको और मिथकों के द्वारा हम एक ऐसी भाषा का सृजन करते हैं जो ज्ञान और संवेदना के नए आयामो को समेटने मे समर्थ होती है। भाषा का मूल रूप 'प्रतीकात्मक' और 'मिथकीय' है। भाषा की यह मिथकीय प्रवृत्ति आदिम (प्राचीन) और आधुनिक मिथको दोनो के लिए सत्य है। अन्तर केवल एक दृष्टि से माना जा सकता है जो उनके विभिन्न परिवेशो और 'दृष्टियो' का है। आधुनिक मिथको को समझने की दृष्टि ज्ञान तथा धारणा (सवेदना सहित) की अधिक अपेक्षा रखती है जबकि आदिम मिथको का समझने की 'दृष्टि' उत्तेजना एव प्रागतार्किक मनोदशाओ पर अधिक आश्रित रही है। इसका यह तात्पर्य नही है कि आज के मिथको मे उत्तेजना या सवेदना का सर्वथा लोप हो गया है पर इसका अर्थ केवल यह है कि उनकी निहिति मे मात्रा का अन्तर आ गया है। यह अन्तर युग की परिवर्तित 'सवेदना' और 'दृष्टि' के द्वारा ही समझा जा सकता है। विकास और सृष्टि का मिथक,

1 लैंगवेज एण्ड मिथ, कैसिरर, पृ० ४४

अतिमानव का मिथक तथा मानववादी 'हीरो' के मिथक आदि कुछ ऐसे मिथ बनते जा रहे हैं जो ज्ञान और धारणा के नवीन विकास से सम्बधित हैं। इन समस्त मिथको के चारो ओर एक ऐसा चतुर्दिक 'प्रभा-मण्डल' शनै शनै एकत्र होता जा रहा है जो इन्हे एक मिथकीय अवधारणा प्रदान करता रहा है। इस सन्दभ मे एक तथ्य और भी आवश्यक है जिसकी ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। आधुनिक मिथको का एक अभिन्न तत्व ज्ञान के अतिरिक्त यथाथ का एक ऐसा रूपान्तरण है जो मिथिक चेतना का नया सन्भ ही नही देता है पर मिथक की पारम्परिक अवधारणा को भी परिवर्तित करता है अक्सर यह मान्यता स्थिर सी हो गई है कि मिथक और यथाथ म कोई सम्बध नही है अथवा मिथक का सम्बध 'मिथ्या' से है,[1] अत यथाथ से उसका कोई सरोकार नही है। समाजशास्त्रीय और मानवशास्त्रीय दृष्टि से यदि कहा जाए तो मिथिक चेतना का जन्म ही सामाजिक वास्तविकता से हुआ है जो परोक्ष रूप से मिथक और यथार्थ के आपसी सम्बध का रेखाकित करते हैं। यहाँ पर यह ध्यान रखेगा आवश्यक है कि यथार्थ एक गतिशील प्रत्यय है जो ज्ञान और सवेदना के परोक्ष एव अपरोक्ष आयामो से सम्बन्धित रहता है। इस दृष्टि से यथाथ केवल अपरोक्ष ही नही है, पर वह परोक्ष एव सापेक्ष है। मिथक यथाथ के इन दोनो पक्षो को अपने अन्दर समेटे रहता है। यही कारण है कि मिथ कभी यथार्थ हो जाते हैं और यथार्थ कभी मिथक। मिथ और यथाथ का यह अन्योन्य सक्रमण इतना सूक्ष्म और तरल है कि उसे पूर्णरूप से पकड पाना एक दुर्लभ काय है। आधुनिक मिथको की सरचना म यथाथ का यही गतिशील एव सापेक्ष स्वरूप लक्षित होता है। इतिहास विज्ञान और दशन के मिथक यथाथ और ज्ञान के इसी स्वरूप का उद्घाटित एव रेखाकित करते हैं। इस तथ्य को ध्यान म रखकर ही हम आज के मिथको का सही एव सार्थक विवेचन कर सकते हैं। यह केवल एक 'दृष्टि है, पर मैं यह दावा करता हूँ कि यह अपने म अतिम सत्य है क्योकि कोई भी दृष्टि या विचार दृष्टि अपने म पूण नही हो सकती है, पर हा वह 'पूणता की खोज म सहायक अवश्य हो सकती है।

३ मिथकीय अथ-व्यवस्था

आधुनिक मिथको के स्वरूप को एक अन्य दृष्टि से भी समझा जा सकता

---

१ देखिए "मिथक की अवधारणा' नामक प्रथम अध्याय।

है। और वह दृष्टि है लेवी स्त्रास या गठनात्मक विज्ञान।[1] उसके अनुसार मनुष्य का चिन्तन अपने मूल रूप में गठनात्मक प्रक्रिया का परिचय देता है। इस प्रकार, मिथ की भाषा संस्कृति का एक अभिन्न अङ्ग है। प्रत्येक संस्कृति अपने स्वरूप के अनुसार मिथकों का सृजन करती है। यहाँ पर स्त्रास का यह मत कि मिथ की भाषा संस्कृति के अन्य रूपों से अलग है पूर्णरूप से सत्य नहीं है। इसका प्रमुख कारण यह है कि आधुनिक मिथक संस्कृति के विभिन्न रूपों यथा कला, विज्ञान, दर्शन, धर्म और मानवशास्त्र आदि से संवाद के द्वारा मिथकों का सृजन कर रहे हैं। यही नहीं, विभिन्न ज्ञान क्षेत्रों के मिथक भी एक दूसरे से संवाद की दशा में है अथवा उनका विकास कभी-कभी एक दूसरे के प्रभावों से इतना प्रेरित है कि नए मिथकों का स्वरूप स्पष्ट होता जा रहा है। इतिहास और विकास के मिथकों का स्वरूप दर्शन, विज्ञान और धर्म के प्रत्ययों पर आधारित एवं विकसित हुआ है। यह स्थिति सामान्य न होकर विशिष्ट है, और इस दृष्टि से कुछ आधुनिक मिथकों का स्वरूप एक प्रकार से विशिष्ट ही कहा जा सकता है। इसका विवेचन आगे किया जाएगा।

उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में एक बात यह भी स्पष्ट होती है कि मिथक मानव संस्कृति में अर्थ सम्प्रेषण की एक महत्वपूर्ण व्यवस्था है। यह मिथकीय अर्थ-व्यवस्था मानव संस्कृति के वैचारिक एवं बौद्धिक (साथ ही संवेदनात्मक) पक्ष को भी रेखांकित करती है जिसके बगैर न मानव का और न संस्कृति का अस्तित्व ही मान्य होगा। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि मिथक किसी भी संस्कृति का ऊपरी दावा नहीं है, वरन् वह उसका एक गठबन्धन है। मिथक की यह 'आंतरिकता' उसे 'व्यवस्था' भी प्रदान करती है और दूसरी ओर, व्यक्ति और समाज उन मिथकों की व्यवस्था ही नहीं करते है, पर उन्हें विभिन्न अर्थ-सन्दर्भ प्रदान करते हैं। विकास हो या संकट काल—संस्कृति की इन दोनों दशाओं में मानव की आशा और प्रेरणा, संघर्ष और प्रगति उसके मिथकों के द्वारा ध्वनित होती है।[2] इस प्रकार काल क्रम में मानव और मिथक एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और इस प्रकार, काल की सापेक्षता में मिथक का रूपान्तरण घटित होता है। यही मिथक का 'काल' के साथ रूपांतरण है। इस रूपांतरण में वर्तुलित आलोक की रश्मियाँ धीरे-धीरे एकत्र होने लगती है। और मिथक की

१ गठनात्मक या संरचनात्मक व्याख्या का विवेचन समाजशास्त्रीय व्याख्या के अन्तर्गत किया जा चुका है।

२ एनसाइक्लोपीडिया तथा समाज दर्शन, जेम्स एलन (अनूदित) भाग २, पृ० ७४

अर्थवत्ता मे विस्तार और गहराई का समावेश होने लगता है । इस सैद्धान्तिक विवेचन के प्रकाश म आधुनिक मिथको के स्वरूप और सरचना को हृदयगम किया जा सकता है और उनकी अर्थवत्ता को सास्कृतिक सन्दर्भ म रेखाकित किया जा सकता है ।

आधुनिक मिथको और प्राचीन मिथक के स्वरूप म एक सूक्ष्म अन्तर है जो सामूहिक अचेतन से सम्बन्धित है । आज के मिथक जहाँ एक ओर हमारे अचेतन के अग है वही दूसरी ओर वे चेतना के भी अभिन्न अग है । आज का सन्दर्भ नितान्त अचेतन क्रियाओ का रगस्थल नही है, पर इनके साथ ही साथ, वह चेतन इच्छा और ज्ञान (विचार) की एक मिश्रित अभिव्यक्ति भी है । यही कारण है कि आधुनिक मिथक मे वह फैटेसी अथवा वायवी वातावरण नही प्राप्त होता है जो हम आदिम मिथको म मिलता है । अधिक से अधिक इतना कहा जा सकता है कि आज के मिथको म फैटेसी की मात्रा अपेक्षाकृत पहले से काफी कम हो गयी है, पर इसका यह अर्थ कदापि नही है कि आज के मिथको म फैन्टेसी या फिक्शन का तत्व बिल्कुल नही है । क्योकि मिथक, चाहे वे किसी भी युग और काल के हो, उनके स्वरूप निमाण मे प्रभामण्डल या फिक्शन का तत्व अवश्य निहित प्राप्त होगा ।

आधुनिक मिथको के उपयुक्त स्वरूप के प्रकाश मे कुछ आधुनिक विकासशील अथवा विकसित मिथको को लेना आवश्यक है जो मिथक चेतना की सर्वव्यापकता और गतिशीलता को रेखाकित करते हैं । इस सन्दभ मे मैं दो प्रकार के मिथको का विवेचन करूँगा—एक इतिहास मिथक और दूसरे विज्ञान के मिथक ।

४ इतिहास के मिथक

जहाँ तक इतिहास के मिथको का प्रश्न है, वे बनने की प्रक्रिया म है और कुछ अपना स्वरूप का स्पष्ट भी कर चुके है । यहा पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रत्येक ऐतिहासिक परिवतन अपने मिथको का निमाण करता है । इस सन्दभ म प्रजातान्त्रिक, अधिनायकवादी और साम्यवादी विचारदर्शनो का एक विशेष योगदान है तो दूसरी ओर वैज्ञानिक विचारो तथा मूल्यो का भी समावेश है जो आज के ऐतिहासिक युग की कल्पना को साकार करता है । आज का यह ऐतिहासिक परिवतन जहाँ एक ओर विचारो और अवधारणाओ के द्वन्द्व को रेखाकित करता है, वही दूसरी ओर, अपने नए मिथको का सृजन भी करता है अथवा नया मिथकीय कल्पनाओ का क्रमिक

साकारता प्रदान करता है। यहाँ पर भी मिथक का शनै-शनै काल के दीर्घ आयाम में सृजन होता है जैसा कि हम प्राचीन एवं आदिम मिथकों में प्राप्त होता है।

इस ऐतिहासिक प्रक्रिया में इतिहास की अवधारणा का भी अपना एक महत्व है जो इतिहास को स्वयं एक मिथकीय संस्पर्श प्रदान करता है। आज के सन्दर्भ में इतिहास की अवधारणा केवल तथ्य एवं तिथि संकलन मात्र नहीं है, पर अब वह एक मूल्य या अर्थवत्ता ग्रहण करता जा रहा है। इस दृष्टि से इतिहास का सम्बन्ध विचारों के विकास एवं उनके सम्बन्ध से है। तिथि संकलन और तथ्य निर्देश का महत्व इन्हीं विचारों को रेखांकित करना है, अथवा दूसरे शब्दों में, यह तथ्य परकता वैचारिकता का उपादानमात्र है न कि लक्ष्य। लक्ष्य अथवा ध्येय है, युग विशेष के विचार-दर्शन या दर्शनों का एक सापेक्ष मूल्यांकन और उनकी गतिशीलता।

इतिहास एक गत्यात्मक विचार-मिथक

इस दृष्टि से, इतिहास एक गत्यात्मक विचार मिथक है क्योंकि अब वह स्वयं पाप या पुण्य का निर्णायक है। मध्यकालीन दैवी सत्ता का स्थानान्तरण अब 'इतिहास' ने ले लिया है। इतिहास अब एक शक्ति या नियति का रूप लेता जा रहा है। अब हम यह कहते हैं कि 'इतिहास ही बताएगा' या 'इतिहास ही साक्षी है' तब हम एक प्रकार के मूल्य कथन करते होते हैं अथवा इतिहास को 'मूल्यवत्ता' प्रदान करते हैं। उसे एक नियति या सत्ता के रूप में अर्थ देते हैं। यहाँ पर इतिहास पर ऐसी नियति या शक्ति है जो मानवनियति को भी परिचालित करती है। इतिहास के प्रति यह मनोभाव एक अन्य सत्य की ओर संकेत करता है कि अब इतिहास मिथक धर्मनिरपेक्ष मिथ हो गया है। सच तो यह है कि इतिहास को धर्मनिरपेक्ष बनाकर हमने सब कुछ बदल डाला।[1] इतिहास से जब उसकी परम्परागत पवित्र भावना को, जो धर्म की भावना का एक प्रमुख एवं अभिन्न तत्व है, उससे प्रच्युत कर दिया गया, तब इतिहास का प्रत्ययात्मक रूप क्रमशः विकसित होने लगा। इतिहास अब एक अवधारणात्मक प्रक्रिया का गत्यात्मक स्वरूप है, वह कोई स्थिर या जड़ रूप नहीं है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि इतिहास अब अपने में ही तथा अपने द्वारा

१ रतत्व और समाज दर्शन (सं०) जेनयूज एलल का लेख, पृ० ७७

प्राप्त किया गया 'अर्थ' है जो एक तरह से इतिहास को 'अर्थ प्रक्रिया' से जोड़ता है। मानव संस्कृति और सभ्यता इसी अर्थ प्रक्रिया का फल है जो मूलत इतिहास की गत्यात्मक प्रक्रिया के अन्दर घटित होने वाली मानवीय शक्ति एव ऊर्जा का वैचारिक विकास है।

५ आधुनिक हीरो-मिथक

इस परिवर्तित ऐतिहासिक सन्दर्भ म हीरो का मिथ अपने नवीन रूप म विकसित होता है जिसका सम्यक् विवेचन आवश्यक है। प्रत्येक युग की अपनी 'विश्वास प्रतिभाएँ होती हैं और आज के युग की भी अपनी विशेष विश्वास प्रतिभाएँ हैं जो मानव समूह को विभिन्न स्तरो पर प्रभावित करती है। ये विश्वास एव सम्मान की प्रतिभाएँ अनेक व्यक्तियो (या समूहो) या जाति की प्रेरणा स्रोत बन जाती है। इन विश्वासो प्रति ाओ का स्वरूप मूलत 'धारणाकृत-मिथ' होता है जो किसी भी जाति के अचेतन और उप-चेतन म क्रमश अपना स्थान बनाने लगती है। यह मानसिक एव सामाजिक प्रक्रिया एक दूसरे की पूरक होती है और क्रमश यह प्रक्रिया 'हीरो' या नायक की भावना को साकार करती है। वास्तव म, अधिकाश हीरो के मिथक उसी समय अपना रूप क्रमश विकसित करते हैं जिनका इतिहास अर्थयुक्त, प्रतीकात्मक और युग के व्यापक सन्दर्भों को अपने अन्दर समेटने म समर्थ होता है। इस प्रकार के हीरो का एक अपना सन्दर्भ होता है जो इतिहास की किसी न किसी द्वन्द्वात्मक व्यवस्था को रेखाकित करते हैं। मार्क्स, गाधी और माओ (लेनिन भी) का रूप कुछ इसी प्रकार का है। ये व्यक्ति अपने समय को अर्थवत्ता प्रदान कर सके। और क्रमश 'मिथ का सृजन कर सके'। ऐतिहासिक सन्दर्भ मे प्रजातन्त्र, समाजवाद, साम्यवाद और तकनीकी विकास न इन मिथको का सृजन परोक्ष रूप से किया और क्रमश उनका महत्व, मिथकीय सन्दर्भ को भी अपने चारो ओर एकत्र करने लगा। इनके चारो ओर जो 'प्रभामण्डल' क्रमश एकत्र होता जा रहा है। वह इन्हे एक मिथक का रूप देता जा रहा है। इस तथ्य का एक सुन्दर विश्लेषण बर्ट्रेण्ड रसेल की पुस्तक हिस्ट्री आफ वेस्टर्न फिलासफी म दिया गया है जहा उन्होने ईसाई धर्म,ज्यूडीवाद और मार्क्सवाद के अनेक तत्वो की समानता की ओर सकेत किया है।[1] जो एक प्रकार से, मिथक सृजन की प्रक्रिया को सामने रखता है,

---

१ हिस्ट्री आफ वेस्टर्न फिलासफी, बर्ट्रेण्ड रसेल, पृ० ३५४-३५५

तो दूसरी ओर यह स्पष्ट करता है कि मिथक सृजन एक जटिल और जैविक प्रक्रिया है जो अपने चारो ओर अनेक मिथकीय तत्वो का (प्रभामण्डल का रूप) एकत्र करती रहती है।

मार्क्स, गाधी और माओ आदि अब व्यक्ति मात्र नही रह गए हैं, पर वे 'प्रतीक' बन गए हैं। व्यक्ति जब क्रमश प्रतीक बनने लगता है, तो वह मिथक की शनै शनै सृष्टि करने लगता है। इस प्रक्रिया को समझने के लिए मैं तुलनात्मक रूप से मार्क्सवाद और ईसाई धर्म या ज्यूडी वाद के उन तत्वो की ओर सकेत करूँगा जो मिथकीय रूपान्तरण का स्पष्ट नही करते हैं, पर तुलनात्मक रूप से समान मिथकीय तत्वो की ओर सकेत भी करते है। ईसाई धर्म मे 'ईश्वर' और मार्क्सवाद म 'इतिहास की द्वन्द्वात्मकता' का समान महत्व ह। ईश्वर एक निरपेक्ष सत्ता है तो इतिहास भी एक ऐसी ही निरपेक्ष सत्ता है जिसकी ओर मैंने आरम्भ मे ही सकेत किया था। जहाँ तक पैगम्बर और मसीहा का प्रश्न है, धर्म के क्षेत्र म 'ईशु' का मसीहा रूप स्पष्ट ही है, पर मार्क्सवाद मे मार्क्स ही पैगम्बर का रूप ग्रहण करता जा रहा है और लेनिन मसीहे के रूप मे माना जा रहा ह। 'मसीहा' का अवतरण जिस प्रकार ईसाई धम म चेतना या क्रान्ति का सूचक है, उसी प्रकार साम्यवाद के लिए १९१७ की क्राति नयी चेतना का प्रतिरूप है। धर्म का पुरोहित वर्ग जिस प्रकार नियामक और नियता का रूप है, उसी प्रकार मार्क्सवाद का नियामक और नियता साम्यवादी दल है। यही नही, दोनो के मिथक सतत एक 'यूटोपिया' का निर्माण करते हैं। जहा मानव पहुँचना चाहता है, पर शायद पहुँच नही सकता है। फिर भी 'वह' स्वप्न लोकस्पर्शी है, वही तो उसकी जिजीविषा का प्रमाण है। ईसाई धम म यह यूटोपिया 'वर्ग' की अवधारणा मे निहित प्राप्त होता है तो मार्क्सवाद मे साम्यवादी राष्ट्रसघ की धारणा मे। इस पूरी स्थिति का इस प्रकार रखा जा सकता है।

	ईसाई धम	मार्क्सवाद
१	ईश्वर	द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
२	पैगम्बर	मार्क्स
३	मसीहा	लनिन
४	मसीहा का अवतरण	१९१७ की क्राति
५	पुरोहित वर्ग	साम्यवादी दल
६	स्वर्ग	साम्यवादी राष्ट्रसघ

कुछ इसी प्रकार की प्रक्रिया हमें बौद्धधर्म और गाधीवाद मे भी दृष्टिगत होती है। यह तुलना समानता प्रदर्शित करने के अतिरिक्त मिथकीय सृजन—प्रक्रिया की समानता को भी रेखांकित करती है जो आधुनिक काल म अधिक अवधारणात्मक एव प्रत्ययात्मक हो गयी है। बौद्ध धर्म म दु खवाद को सत्य का रूप माना गया है जो मानव जीवन का सत्य है, तो गाधीवाद म 'राम' को सत्य का परम रूप स्वीकार किया ग । बौद्धमत म बुद्ध को पगम्बर का रूप माना गया तो गाँधी को अवतार या पैगम्बर के रूप म स्वीकार किया जाने लगा है। यदि गहराई से देखा जाए तो हिन्दूधर्म मे 'अवतार की भावना 'व्यक्ति' को मिथ का रूप प्रदान कर देती है और साथ ही उसे दिव्य का अवराहण भी स्वीकार करती है। मिथकीय प्रक्रिया से बुद्ध, महावीर, शकराचार्य और गाधी की विश्वास प्रतिभाएँ इसी रूप म विकसित हो रही है अथवा काफी सीमा तक हो चुकी हैं। जिस प्रकार बुद्ध ने अपना उत्तराधिकारी आनन्द को बनाया, उसी प्रकार गाधी ने नेहरू को अपना विश्वासी 'उत्तराधिकारी' स्वीकृत किया। बौद्ध धर्म म विहार या मठ का जो महत्व रहा है, वही महत्व गाँधीवाद मे 'आश्रमो का है जिसके स्वरूप मे 'मठ' की सी केन्द्रीयता और वर्जनाएँ नही हैं। बौद्ध धर्म म मोक्ष को अन्तिम लक्ष्य के रूप म स्वीकार किया या ता गाधीवाद मे 'स्वराज्य' या 'रामराज्य' को स्वीकार किया गया यही नही जिस प्रकार बौद्धधर्म राजनीति को सचालित करती रही है, 'कुछ उसी प्रकार गाधीवाद भी आज की राजनीति को (नकारात्मक एव सकारात्मक रूप मे) प्रभावित किये हुए हैं। अहिंसा के तत्व दोना मे समान हैं। इस प्रकार बौद्धधर्म और गाँधीवाद की मिथकीय सरचना के प्रमुख तत्व इस प्रकार हैं—

	बौद्ध धम	गाँधीवाद
१	दुखवाद या सत्य	राम या सत्य
२	बुद्ध	गाधी
३	आनन्द (शिष्य)	नेहरू
४	बिहार या मठ	आश्रम
५	मोक्ष	स्वराज्य या रामराज्य

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि किसी भी युग की विश्वास प्रतिमाएँ क्रमश 'हीरो' के रूप मे प्रतिष्ठित हो जाती हैं अथवा दूसरे शब्दो मे यह भी कहा जा सकता है कि ये हीरो किसी विचार प्रत्यय अथवा सिद्धान्त (वाद) के रूप म विकसित हो जाते हैं तथा अपने चारा ओर क्रमश

'प्रभामण्डल' एकत्र करने लगते हैं। हीरो की यह अवधारणा का क्रियाशील रूप हम साहित्य मे भी प्राप्त होता है जहाँ पर व्यक्ति विशेष एक विशेष सन्दर्भ प्रभामण्डल एकत्र करता है, और रचनात्मक स्तर पर मिथक का रूप ग्रहण करता है। यही कारण है कि साहित्य के 'हीरो' रचनाकार की एक ऐसी सृष्टि होते हैं जो कभी-कभी मिथक का रूप ग्रहण कर लेते हैं। यह प्रक्रिया सामान्य नही है, विशिष्ट है जहाँ तक आधुनिक काल का प्रश्न है। होरी (गोदान), देवदास (देवदास) आदि इसी प्रकार के 'नायक' कहे जा सकते हैं। साहित्यिक एव सामाजिक सन्दर्भ मे नायक का मिथकीय रूप द्वन्द्व और यातना की मिथित प्रक्रिया का फल ज्ञात होता ह।

७ जनवादी सस्कृति का मिथक

इतिहास की पुरागाथा या मिथक का विवेचन उस समय तक अपूर्ण रहेगा जब तक कि आज के ऐतिहासिक परिवर्तन से उद्भूत एक अय मिथक का विवेचन न किया जाये। यह मिथक है—"जनवादी सस्कृति का मिथक"। इस मिथक का विकास आज के द्वन्द्वात्मक युग का विचार-दर्शन भी कहा जा सकता है। इस मिथक का विकास उनीसवी शताब्दी से आरम्भ होकर बीसवी शताब्दी तक आते-आते अपना एक निश्चित मिथकीय अर्थ ग्रहण कर चुका है। ऐतिहासिक दृष्टि से "जन" शब्द (मास) का एक अपना विचार-दर्शन है जो क्रमश समूह गुट या गाँव से कही व्यापक अर्थ प्रदान करता है। उस जनवादी सस्कृति के मिथक का विकास आधुनिक युग का एक विशेष (प्रत्यय) है जो इतिहास की नवीन स्थितिया और शक्तियो क द्वन्द से उत्पन्न एक ऐसा यथार्थ है जो मिथक के रूप मे स्वीकार किया जा रहा है। यह 'मिथक', यह भी स्पष्ट करता है कि यथार्थ की गत्यात्मकता कभी-कभी मिथिक चेतना की गत्यात्मकता को स्वीकार कर लेती है। यहाँ यथार्थ, मिथक का रूप ग्रहण करता है, क्याकि उसके चारो आर वैचारिक द्वन्द से उद्भूत एक 'प्रभामण्डल' एकत्र होता जा रहा है। *इसका विवेचन यहाँ अपेक्षित है जो आज की मानवीय* चेतना को, किसी न किसी रूप से प्रभावित एव आन्दोलित कर रहा है।

जनवादी सस्कृति (मास कल्चर) का मिथक एक ऐसा गत्यात्मक "प्रत्यय" है जिसके निर्माण मे अनेक राजनैतिक एव आर्थिक शक्तियो का हाथ रहा है, तो दूसरी ओर वैचारिक धरातल पर अनेक विचारको दार्शनिको का योगदान रहा है। यहाँ पर यह मानना कि केवल मार्क्स, लेनिन या गाँधी ने ही इस मिथक क विकास म योगदान दिया है एक भ्रामक और अधूरी अवधारणा

होगी। सच तो यह है कि इन विचारको के अतिरिक्त अनेक अन्य विचारक एव चितक भी हैं जिन्होंने जनवादी संस्कृति के मिथक को अर्थवत्ता प्रदान की है।

यहा पर 'जन' शब्द एक विशेष अर्थ प्रदान करता है जो वैज्ञानिक विकास, उद्योगवाद, प्रजातन्त्र सर्वहारा, मध्यवर्ग, समानता, स्वतन्त्रता और न्याय जैसे 'प्रत्ययो' एव विचारणाओ का एक सगुम्फित गत्यात्मक रूप है। इन सभी तत्वो ने न्यूनाधिक रूप से जनवादी संस्कृति के मिथक का एक ऐसा आकार और स्वरूप प्रदान किया जो विचार और कर्म के धरातल पर मानवीय क्रियाओ को एक अर्थवत्ता प्रदान करता है, तो दूसरी ओर मानव की सर्जनात्मक शक्तियो को एक नया आयाम प्रदान कर रही है। यह 'जन' शब्द केवल शब्दमात्र नही है, पर एक 'विचार' है, एक ऐसा विचार दर्शन जिसने केवल राजनीतिक और अर्थनीति को ही प्रभावित नही किया है, पर साहित्य, कला, दर्शन, धर्म और अन्य मानवीय क्रियाओ को भी रचनात्मक एव वैचारिक स्तर पर प्रभावित किया है।

८ इलीट, समूह और मशीन

यहाँ पर आकर एक अन्य तत्व का विवेचन आवश्यक है। टी० एस० इलियट, लीविस आदि विचारको ने समूह (विशिष्ट) और 'इलीट' संस्कृति की बात की है जो उनके अनुसार व्यक्ति का एक ऐसा स्रोत है जहाँ से (विशिष्ट या इलीट) 'वह' प्रेरणा लेता है।[1] इससे यह स्पष्ट होता है कि 'इलीट' और समूह का एक सापेक्ष सम्बन्ध है और जहाँ पर भी यह 'इलीट' समूह से कट जाता है, वहा जनवादी चेतना का एक स्वस्थ विकास सम्भव नही है। यहाँ पर मशीन या यन्त्र ने भी अपना योगदान दिया। यही कारण है कि जनवादी मिथक के विकास मे समूह, इलीट, व्यक्ति और कामगर (श्रमिक) सबका एक समष्टि योगदान है। यहाँ पर मशीन या यन्त्र ने भी अपना योगदान दिया। सप्रेषण माध्यमो के विकास के कारण जनवादी मिथक का विकास इसलिए सम्भव हुआ कि इन माध्यमो ने 'विचार-दर्शनो' को 'जन' मे प्रेषित किया और इसका प्रभाव यह पडा कि जनवादी मिथक युग की आकाक्षा को रूपायित कर सका। अनेक विचारको का यह भी मत है कि मशीन के कारण संस्कृति का अमानवीयकरण हुआ और व्यक्ति एक मशीन के पुर्जे के समान हो गया। मानव का यह अवमूल्यन यान्त्रिकता की देन है जो जनवादी मिथक की एक

१ कल्चर ऐण्ड सोसाइटी, विलियम्स, पृ० ३१३

ऐसी विसगति है जिसकी आर साहित्यकार, कलाकार और दार्शनिक काफी चिंतित हैं। परन्तु दूसरी ओर, यह एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है जिसे नकारा भी नहीं जा सकता है। इस दृष्टि से जनवादी मिथक जहा एक आर 'जन' की आकाक्षा का उद्घाप है, वही उसे 'व्यक्ति' की अस्मिता को भी सुरक्षित रखना है जो भविष्य ही बता सकेगा।

जनवादी मिथक के विकास जहा एक ओर यान्त्रिकता और तकनीक ने सकारात्मक यागदान दिया, वही उसन नकारात्मक पक्ष की ओर सकेत किया। यान्त्रिकता और तकनीक के अत्यधिक प्रभाव स 'जनवाद' का अस्तित्व तो मुखर हुआ, पर दूसरी आर उसने व्यक्ति के मूल्य का अपेक्षाकृत कम किया। कला और साहित्य, धर्म और दर्शन व्यक्ति की इस 'अस्मिता' के प्रति जागरूक है और यही कारण है कि 'आतरिकता' के बगैर जनवादी सस्कृति का मिथक एक पक्षीय होता जा रहा है। यहा पर बर्ट्रेंड रसेल का यह मत ही काफी सीमा तक सत्य प्रतीत हाता है कि यन्त्र आर तकनीकी ने विज्ञान के 'शक्तिमूल्य को विकसित किया है जो विज्ञान का केवल एक पक्ष है। विज्ञान का एक अन्य पक्ष उसका वैचारिक या प्रममूल्य है।[1] इसका फल यह हुआ कि अजनबीपन और एकाकीपन जनवादी मिथक का एक ऐसा अग हो गया जो उसके नकारात्मक पक्ष को ही उद्घाटित करता है। इससे यह स्पष्ट हाता है कि जनवादी मिथक का भावी विकास इन दोना छोरा को कहा तक एकाकार एव समन्वित कर सकेगा, इस पर आधारित होगा। यह मात्र भावी सम्भावना है जिसकी ओर युग-दर्शन गतिशील हो रहा है।

८ सस्कृति का प्रजातन्त्रीकरण

इस जनवादी मिथक के विकास मे जनतान्त्रिक मूल्या और विचारा का एक महत्वपूर्ण स्थान है। प्रजातन्त्र और मानवतावाद के विचार दर्शन ने अपने सम्मिलित प्रभाव से 'सस्कृति का प्रजातन्त्रीकरण' (या जनतन्त्रीकरण डिमोक्रेटाइ-जेशन आफ कल्चर) करने म सहयाग दिया और इस यागदान म शिक्षा का भी जनतन्त्रीकरण हुआ। ट्रेड यूनियन पूँजीवाद का विराध, सर्वहारा और मध्यवर्ग का उदय तथा आर्थिक वितरण इन सभी शक्तियो न एक साथ मिलकर जनवादी मिथक का निर्माण किया। यहाँ पर इस बात पर ध्यान रखना आवश्यक है कि जनवादी मिथक का विकास केवल सर्वहारा वग का उदय नही है,

१ वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि, रसेल, पृ० ३२

पर उपर्युक्त सभी तत्वा का उसके विकास मे योगदान है। एलन स्विगवुड ने सर्वहारा वर्ग के उदय को जनवादी मियक का केवल एक तत्व कहा है, वह पूर्णरूप से सत्य नही है।[१] यदि गहराई से देखा जाय तो जनवादी मियक का विकास पूँजीवादी व्यवस्था के विरोध तथा उसके अतर्विरोधा का फल है और जनतांत्रिक मूल्या की क्रमिक स्थापना है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि सस्कृति के जनतत्रीकरण' को ऐतिहासिक नियतिवाद के द्वारा ही समझा और विश्लेषित किया जा सकता है जिसमे साहित्यिक तथा अन्य प्रकार की पुस्तक पढ़ने एव अध्ययन करने की प्रवृत्तिया भी काफी सीमा तक शामिल हैं। इस दृष्टि से साक्षरता का एक महत्वपूर्ण स्थान माना जा सकता है क्योकि इसके बगर व्यक्ति (शिक्षित की चेतना स्वय समूह, समाज और वग से अपने सम्बध का उचित प्रकार से स्थापित नही कर सकेगी। यही कारण है कि बगर 'जन' के शिक्षित हुए प्रजा-तत्र सफल नही हो सकता है, केवल उसका 'आभास' ही होता है। यह स्थिति विश्व के अनेक देशा मे देखी जा सकती है।

आज के सन्दभ म इस प्रकार का प्रजातत्रीकरण जहाँ आज की सस्कृति को एक नया रूप दे रही है, वही वह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मानवीय ज्ञान के क्षेत्रो को भी गतिशीलता प्रदान कर रही है। इसी के विपरीत आज के विश्व म प्रजातत्र की शक्तिया से एक द्वन्द्वात्मक विरोध उन शक्तिया का है जो प्रजातान्त्रिक मूल्या के विकास मे वाधा उत्पन्न कर रही है। अधिनायकवाद तथा इसी प्रकार की व्यवस्था तथा तत्र जनवादी मियक के विकास म व्यवधान अवश्य उपस्थित कर रहे हैं, पर इस सत्य के बावजूद भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ऐसे क्षेत्रा और देशा मे भी 'जनवाद' एक अतर्निहित शक्ति या अतर्धारा के रूप मे प्रवाहित प्राप्त होता है। यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो उन्नीसवी शताब्दी की 'माव' सस्कृति (समूह) ही क्रमश बीसवी शताब्दी की जन या मास सस्कृति को विकसित करने म सहायक रही है। यह सक्रमण अनायास नही हुआ है, पर कामगार या सर्वहारा वर्ग के उदय के साथ यह सक्रमण घटित हुआ है।[२] यह सक्रमण ही जनवादी समाज एव सस्कृति की रचना म सहायक हुआ जिसने अनेक राजनैतिक एव सामाजिक सिद्धाता और प्रत्ययो का विकास किया। दूसरे शब्दा म हम कह सकत हैं कि

---

१ दि मिथ आफ दि मास कल्चर, एलन स्विग वुड, पृ० ८६

२ दि मिथ आफ दि मास कल्चर, स्विगवुड, पृ० ११८

जनवादी मिथक का आधार व विकास वर्ग संघर्ष और वर्ग प्रभुत्व पर माना जा सकता है। इसी चेतना ने पूंजीवाद के प्रभुत्व को ललकारा और उससे संघर्ष किया। इटली, फ्रांस, इंग्लैण्ड और जर्मनी आदि देशों में इस सामूहिक विचार-दर्शन ने पूंजीवाद को चुनौती दी और यह चुनौती बीसवीं शताब्दी में अपना गतिशील रूप प्रकट कर सकी। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इस चुनौती का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ और बीसवीं शताब्दी में जनवादी मिथक के अनेक आयाम क्रमश स्पष्ट एवं विकसित होने लगे। समाजवाद साम्यवाद, गाँधीवाद, मार्क्सवाद और माओवाद आदि ऐसे ही आयाम हैं जिन्होंने समष्टि रूप से जनवादी मिथक के विकास में अपना योगदान दिया। कभी-कभी मिथक सृजन में इतिहास की शक्तियाँ कार्य करती हैं जैसाकि हमें जनवादी मिथक के विकास में प्राप्त होता है। अतः यहाँ पर यह कहना कि मिथक इतिहास का विनाश करता है अथवा इतिहास को बाष्पीकृत करता है[1] पूर्ण रूप से सत्य नहीं है। मुझे कभी-कभी ऐसा लगता है कि मिथक 'इतिहास' बन जाता है जब वह 'जनमानस' में एक 'विचार' एक 'प्रेरणा' और एक 'गीत' का रूप ग्रहण कर लेता है। जनवादी मिथक एक ऐसा ही 'इतिहास-मिथक' है जो अपनी गतिशीलता के द्वारा जनमानस को आन्दोलित कर रहा है। रचनाकार की सृजनात्मकता इसी मिथक से प्रेरणा और गति ले रही है जो कला साहित्य, दर्शन और सामाजिक विज्ञानों में परोक्ष या अपरोक्ष रूप से देखी जा सकती है।

८ युवक और राष्ट्र मिथक

इस जनवादी मिथक को गतिशील बनाने वाले दो प्रमुख तत्त्व हैं—एक विचार-दर्शन का रूप जिसकी व्याख्या ऊपर की जा चुकी है जो एक ऐतिहासिक परिवर्तन की ओर संकेत करता है। दूसरा तत्त्व है 'युवक' जिस पर सारी प्रगति और सारे विकास को, एक प्रकार से, केन्द्रित कर दिया गया है और उसे जन आकांक्षाओं की पूर्ति का माध्यम बनाया जा रहा है। राजनेता, प्रशासक और तन्त्र की विभिन्न प्रणालियाँ उसे परोक्ष रूप से एक माध्यम के रूप में स्वीकार कर रही हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रगति का एक प्रमुख आधार 'युवक' है जो अपने ही विशिष्ट इतिवृत्त या 'प्रभा मण्डल' का सृजन करता जा रहा है। युवक इस प्रगति का प्रेरणा स्रोत बनता जा रहा

---

१ दि मिथ आफ दि मास कल्चर, पृ० १२०

है। राष्ट्र और समाज की प्रगति और परिवर्तन का यह एक ऐसा माध्यम है जो विशिष्ट प्रकार का है। राष्ट्र और युवक का एक गहरा सम्बन्ध है। यदि व्यापक दृष्टि से देखा जाए तो 'राष्ट्र' की अवधारणा भी एक 'प्रभामण्डल' को एकत्र करती जा रही है, और 'राष्ट्र' भी एक मिथक बनता जा रहा है। राष्ट्र मिथक का उदय उस समय होता है जब हमारी दृष्टि इतिहास के प्रति पैनी हुई जब इतिहास स्वयं ही एक 'अमूल्य' बना, तब क्रमश राष्ट्र की धारणा म मूल्य, स्वतन्त्रता, स्वायत्तता और विवेक का 'दैवीकरण' हुआ जा चला, साहित्य और राजनीति मे अभिव्यक्त हुआ। यहाँ पर यह ध्यान देने योग्य बात है कि राजनैतिक मनोभावा न एक धार्मिक जोश की तरह राष्ट्र को एक 'शक्ति' और अस्मिता की सुरक्षा का परम प्रतीक बना दिया। इस प्रकार राष्ट्र प्रगति के मिथक के रूप मे सामने आया और युवक इस प्रगति का प्रेरणा स्रोत बना। राष्ट्र युवका के लिए युवका के द्वारा बनाया हुआ एक मिथक है जिस का दायित्व युवका पर ही डाल दिया गया।[1] इसका फल यह हुआ कि सत्ता, तन्त्र, विचारक और नेता आदि सब उसी पर अपना भार स्थानान्तरित और आरोपित कर उसे 'इतिहास' के प्रवाह म 'झाक' देते हैं। यहाँ पर युवक केवल 'छात्र' नही है, पर वह छात्र, किसान, मजदूर और मध्यवर्ग का व्यक्ति है जो 'युवा' की शक्ति का प्रतीक है। जब इतिहास की कोई समस्या का हल दिखाई नही देता अथवा देखने का प्रयत्न नही किया जाता तब कोई आकर नारा दे जाता है कि 'युवाशक्ति विकास का स्रोत है' या युवक आगे बढ रहा है—ऐसे प्रभाववादी उत्तेजना से भरे वाक्यो के द्वारा यह समझा जाता है कि युवक वह सब कुछ करने मे सक्षम है जो हम (बडे लोग, वृद्ध) नही कर पा रहे है या करना नही चाहते। विडम्बना यह है कि बेचारा युवक इस 'माहौल' मे (जो मिथकीय प्रकार का है) बुरी तरह जकड दिया जाता है।

१० विज्ञान मिथक के दो पक्ष

इतिहास, जनवादी और युवक आदि के मिथको का एक ऐसा वर्ग है जिसन इतिहास की वैचारिक द्वन्द्वात्मकता को किसी न किसी रूप मे रेखांकित किया है। इन मिथको के अतिरिक्त एक और ऐसा वर्ग भी है जिसका सम्बन्ध विज्ञान से है। इतिहास के समान विज्ञान भी एक गत्यात्मक मिथक है जिसकी गत्यात्मकता के दो पक्ष हैं। विज्ञान का तकनीकी और यान्त्रिक पक्ष उसका एक ऐसा 'प्रभामण्डल' है जो रसेल के अनुसार विज्ञान का 'शक्ति मूल्य' है। यह

१ नृतत्व और समाज दर्शन (स०) पृ० ८४

'शक्ति मूल्य' विज्ञान का केवल एक पक्ष है जो उसके मिथकीय रूप को प्रकट करता है। यह शक्ति मूल्य, एक प्रकार से यातुक मनोभाव से सम्बन्धित है क्योंकि 'यातु' (मैजिक) प्रकृति पर अधिकार करना चाहता है और विज्ञान भी इस 'शक्ति' के द्वारा प्रकृति पर अधिकार करना चाहता है अथवा करता है। यह 'अधिकार' की भावना केवल प्रकृति तक ही सीमित नहीं है, पर राष्ट्र तथा समाज पर भी इसका प्रभाव पड़ा है जो अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्विता और संघर्ष को बढ़ाने में भी सहायक हुआ है। विज्ञान की इस शक्ति को शांति तथा विकास कार्यों में भी लगाया गया है जो उसका एक सकारात्मक पक्ष है। यह एक सत्य है कि 'शक्ति' के भी दो पक्ष होते हैं—सकारात्मक एवं नकारात्मक तथा इन दोनों पक्षों में एक द्वन्द्वात्मक स्थिति के दर्शन होते हैं।

विज्ञान का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष उसका वैचारिक या चिंतन पक्ष है जो उसका 'प्रेममूल्य' है।[1] यदि गहराई से देखा जाए तो प्रगति और विकास का मिथक (जो इतिहास की द्वन्द्वात्मकता को प्रकट करता है) विज्ञान के इस पक्ष पर भी आधारित है, तो दूसरी ओर शक्ति मूल्य के विकास में भी इस प्रेम या विचार मूल्य का अपना विशेष एवं अभिन्न योगदान है। डारविन के विकासवाद के द्वारा इतिहास की द्वन्द्वात्मकता को प्रकट किया गया और साथ ही, जैव और अजैव के सापेक्ष सम्बन्ध को रेखांकित किया गया। हीगेल तथा मार्क्स ने वैचारिक द्वन्द्वात्मकता (भौतिकवाद) का जो विचार दर्शन प्रस्तुत किया, उसका प्रेरणा स्रोत डार्विन का विकासवाद माना जा सकता है। इतिहास की इस प्रगति चेतना का एक गहरा सम्बन्ध विज्ञान के इस मूल्य से भी है जो हमें द्वन्द्व और प्रतिद्वन्द्विता के प्रगति मिथक की ओर संकेत करता है। सत्य तो यह है कि इस प्रगति की दुहाई वामपंथी भी देते हैं और दक्षिणपंथी भी।

११ विकासवादी मिथक

विकास के वैचारिक मिथकों में कुछ महत्वपूर्ण मिथक निर्मित हो गये हैं या निर्माण की प्रक्रिया में है। ऐसा ही विकासवादी मिथ है। जो जैविक विकासवाद से सम्बन्धित है। विकास का मिथक काल की निरन्तरता और उसकी सापेक्षता के साथ घटित होता है। विकास वाद और उसकी सापेक्षता के साथ घटित होता है। विकासवाद जैविक विकास की परम्परा को रेखांकित करता है और साथ ही अजैविक जगत का उससे सम्बन्धित कर विकास के क्रमिक सोपानों को स्पष्ट करता है। इन क्रमिक सोपानों (अमीबा से लेकर स्तनधारी

---

१ वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि, बर्ट्रेंड रसेल, पृ० ३२

जीवो तक) के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि मानव प्राणी सरचना तथा मानसिक विकास की दृष्टि से समस्त प्राणियो म 'विशेषीकृत' प्राणी है। हक्सले ने यह मत रखा है कि जैसे-जैसे प्राणी (प्राणियो) का विकास होता है उनकी सरचना जटिल स जटिलतर होती जाती है। अत शारीरिक एव मानसिक सरचना की दृष्टि से मानव, विकास का चरम बिन्दु है।[१] इस प्रकार विशेषीकरण और विकास का अन्योन्य सम्बन्ध है। इसका फल यह हुआ कि विकास परम्परा म 'मानव' केन्द्र म आ गया और उसकी 'दिव्यता' का एक नया परिप्रेक्ष्य प्राप्त हुआ। इस प्रकार विकास के मिथक न मानव का रूपान्तरण किया और उसे 'ईश्वर' या 'दिव्यता' के समकक्ष लाकर खडा कर दिया। महर्षि अरविन्द न अतिमानव (सुपरमैन) की जो कल्पना की है, वह विकास मिथक का ही फल है। भारतीय अवतार भावना भी मानव की इस दिव्यता को रेखाकित करती है।[२] प्रसिद्ध वैज्ञानिक चिन्तक ली काम्ते ड्यू नू ने अपनी पुस्तक 'ह्यूमन डेस्टनी म 'मानव' के भावी विकास का मानसिक एव नैतिक क्षेत्र म ही सम्भव माना है क्योकि उसका कहना है कि 'मानव प्राणी शारीरिक संरचना और प्रजनन क्रिया मे सबसे जटिलतम प्राणी है, इसके आगे इन क्षेत्रो म उसका विकास अब असम्भव नही है, यदि उसका विकास सम्भव है, तो वह मानसिक एव नैतिक क्षेत्र म ही हो सकता है।[३]

११ सृष्टि मिथक

विज्ञान का दूसरा महत्वपूर्ण मिथक है सृष्टि मिथक जिसने मानवीय ज्ञान के क्षेत्र को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रदान किया है। प्राचीन मिथको म भी 'सृष्टि के बारे मे अनेक प्रकार की कल्पनाए की गई हैं। जैसे वृत्त या गोलक, अधकार आदि परम तत्व तथा सम्पूर्णता जिनका विवेचन किया जा चुका है।[४] इन सभी मिथको म सृष्टि रचना के उद्गम और विकास को समझने का प्रयत्न किया गया है जो ब्रह्माण्ड के प्रति मानव की प्रथम एव महत्वपूर्ण रहस्य भावना थी जिसने ब्रह्माण्ड की विराटता को प्रागतार्किक शक्ति के द्वारा हृदयगम करने का प्रयत्न किया। आदिमानव की यह कल्पना प्रातिभ ज्ञान

---

१ दि यूनिटी ऐण्ड डाइवर्सिटी आफ लाइफ, जे० हक्सले, पृ० २६

२ दे० सृष्टि मिथक, अध्याय ८

३ ह्यूमन डेस्टनी, ली काम्टेड्यू नू०, पृ० ३५

४ ह्यूमन डेस्टनी, ली काम्टेड्यू नू, देखें अध्याय ८

(अनुभूति) पर अधिक आश्रित थी, पर विज्ञान ने सृष्टि रहस्यों का उद्घाटन प्रयोग एवं निरीक्षण के आधार पर किया जो तात्विक सन्दर्भों को भी प्रकट करता है। प्राचीन सृष्टि मिथकों में एक प्रकार की दैवीकरण प्रक्रिया प्राप्त होती है पर विज्ञान उस दैवीकरण प्रक्रिया के स्थान पर 'पदार्थ' को सृष्टि का मूल स्रोत मानता है। यदि गहराई से देखा जाए तो वृत्त या पिण्ड की आदिम भावना आज के गोलाकार तप्त हाइड्रोजन की भावना है जिससे ग्रहों, नक्षत्रों का क्रमशः निर्माण हुआ। इस दशा में प्राप्त हाइड्रोजन प्रयोगशाला की हाइड्रोजन से भिन्न है, परन्तु यह हाइड्रोजन द्रव्य दशा में प्राप्त होती है। यह तप्त द्रव्य हाइड्रोजन चक्राकार परिक्रमा और तापमान के क्रमशः कम होने से अनेक पिण्डों (ग्रहों) में क्रमशः विभक्त हो गयी। इस प्रकार सूर्य (मूल पिण्ड) और ग्रहों का (सौर मण्डल) निर्माण हुआ। यही कारण है कि सूर्य का आन्तरिक तापमान लगभग १५ लाख सेंटीग्रेड होता है जो उसके धरातलीय तापमान की अपेक्षा कहीं अधिक होता है।[१] ग्रहों, नक्षत्रों तथा नीहारिकाओं के सृजन में इसी पदार्थ का विशेष हाथ है जिसे 'पृष्ठभूमि पदार्थ' की संज्ञा दी गई है।[२] धीरे-धीरे सूर्य की परिक्रमा गति धीमी पड़ने लगी और ग्रहों की परिक्रमा गति अधिक होने लगी। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप ग्रह क्रमशः सूर्य से दूर होने लगे और इस प्रकार 'ब्रह्माण्ड' की विराटता का स्वरूप मुखर हुआ। यह सारी घटना एक ऐसी प्राक्कल्पना है जो मिथकीय प्रकार की है और सत्य के सापेक्ष रूप का प्रकट करती है। सौरमण्डल की यह संरचना सूर्य और ग्रहों के सापेक्ष सम्बन्ध पर आधारित है जो परमाणु की संरचना (नाभि = सूर्य, एलक्ट्रान = ग्रह) के समान है। इसे यदि तात्विक शब्दावली में कहें, तो जो पिण्ड या माइक्रोकाज्म में है वही ब्रह्माण्ड या मैक्राकाज्म में है।

सृष्टि रचना का मूल 'तत्व' है, पृष्ठभूमि पदार्थ जो कभी भी समाप्त नहीं होता है। वरन् रूपांतरित होकर अनेक रूपाकार ग्रहण करता है। यही रूपांतरण सृजनशीलता है। इससे यह भी प्रकट होता है कि पदार्थ नित्य है और सृष्टि का आदितत्व है। पदार्थ की रूपांतरण एवं संश्लेषण प्रक्रियाएँ गतिशील हैं। इस दृष्टि से पदार्थ भौतिक न होकर अभौतिक है जिस तक हमारा मस्तिष्क पहुँचना चाहता है, पर पूर्ण रूप से उस तक पहुँच नहीं सकता है। पदार्थ की यह रहस्यात्मकता सृष्टि उद्गम की एक ऐसी उपपत्ति है जो

१ दि साइंटिफिक एडवेंचर, हर्बर्ट डिन्जिल, पृ० १८७
२ दि नेचर आफ युनीवर्स, फ्रेड हायल, पृ० ६५

मिथकीय अवधारणा के समकक्ष है। इस प्रकार ज्ञान किसी न किसी स्तर पर मिथकीय प्रकल्पनाओं की सृष्टि करता है।

१२ दिक काल की धारणा

सृष्टि मिथक का सीधा सम्बन्ध ब्रह्माण्ड से है जिसकी विराटता का संकेत विज्ञान के द्वारा भी प्राप्त होता है। ब्रह्माण्ड के स्वरूप को लेकर सबसे महत्वपूर्ण अवधारणा का विकास दिक् और काल के सापेक्ष सम्बन्ध को लेकर हुआ है। न्यूटन तथा केप्लर ने दिक और काल को अनन्त तथा निरपेक्ष स्वीकार किया था, और यह मान्यता विज्ञान के क्षेत्र में एक ऐसी मान्यता रही जिसे सत्य का रूप ही माना गया। परन्तु बीसवीं शताब्दी के प्रथम तथा द्वितीय चरण में आइंस्टाइन ने इस धारणा को एक नया मोड़ दिया। यह एक ऐसी वैचारिक क्रांति थी जिसने ब्रह्माण्ड के रहस्य का, उसकी विराटता को तथा उसके स्वरूप को एक नए परिप्रेक्ष्य में रखने का प्रयत्न किया। आइंस्टाइन ने दिक् और काल को निरपेक्ष न मानकर उन्हें सापेक्ष माना। आइंस्टाइन ने अपने सापेक्षवादी सिद्धान्त के द्वारा यह स्पष्ट किया कि (गणित के द्वारा) दिक और काल ऐसे अमूर्तन हैं जो विश्व की संरचना को समझने में सहायता देते है। आगे चलकर आइंस्टाइन ने दिक् और काल को सापेक्ष मानते हुए उन्हें सीमित माना तथा दूसरी ओर उन्हें सीमित मानते हुए भी आबद्धहीन (अनबाउंडेड) माना।[1] यह धारणा एक तात्विक धारणा सी है जो दर्शन के क्षेत्र को भी प्रभावित करती है और साथ ही दिक् काल के मिथकीय रूप को भी व्यंजित करती है।

दिक् और काल के आयामों में समस्त सृष्टि का विस्तार आबद्ध है। यह आयाम (डाइमेन्शन) क्या है? दिक् एक ऐसा प्रत्यय है जिसके तीन आयाम (लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई) है और काल का केवल एक आयाम 'लम्बाई' है जो काल के रेखीय एवं अप्रत्यावर्तित रूप की ओर संकेत है। यही कारण है कि काल एक गति है जो निरन्तर आगे बढ़ती है। दिक् और काल की स्थिति सापेक्ष है, अतः 'दिक्-काल' एक चतुर्आयामिक विस्तार है जिसमें समस्त सृष्टि अवस्थित है। सृष्टि का सृजन और विलय इसी दिक्काल के आयामों में घटित होता है और यह प्रक्रिया नित्य है। दिक् काल की यह विराटता एक द्रष्टा की सापेक्षता में ही अस्तित्ववान है। इसका अर्थ यह हुआ कि दिक् और काल का अस्तित्व विषयीगत है। यही नहीं अन्य प्रकार के नियम तथा घटनाएँ (पदार्थ विभाजन से सम्बन्धित) मूलतः आत्मपरक या विषयीगत

१ दि फिलासफी आफ फिजिकल साइंस —आर्थर इडिंगटन, पृ० ८५

है।[1] यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो विज्ञान केवल वस्तुपरक ज्ञान नही है, पर वह आत्मपरक या विपर्यगत ज्ञान भी है। आइस्टाइन का विचार दर्शन इस ओर इगित करता है जो मात्र भौतिकतावादी दृष्टि का पक्षधर नही है।

१३ विस्तरणशील विश्व का मिथक

इस पृष्ठभूमि के अवकाश मे एक अन्य महत्वपूर्ण प्रस्थापना है दिक् का सदा विस्तरणशील आयाम। यह क्रिया नीहारिकाओ (गलेक्सीज) के सृजन और विलय का फल है। नीहारिका की सरचना म तारो का पुज रहता है। आकाश-गगा एक ऐसी ही नीहारिका है जो हमारे दृष्टिपथ मे आ जाती है। अन्यथा न जाने इस प्रकार की कितनी नीहारिकाएँ हमारी दृष्टि से परे हैं। नीहारिका का एक-एक तारा सूय है जिसका अपना सौरमण्डल है। इसस यह कल्पना की जा सकती है कि दिक् के विराट आयाम म असख्य सौरमण्डल हैं जो बनते एव विलय (पृष्ठभूमि पदाय म) होते रहत है। यह क्रम निरन्तर चलता रहता है।

यह कहा जा चुका है कि दिक् निरन्तर फैल रहा है। चक्राकार तारा पुजो का बिखरना इस बात की ओर सकेत करता है कि उनकी विस्तार की गति कितनी अधिक है। इन तारापुजो का एक अन्य नाम (द्वीपविश्व) भी है। इनमे स प्रत्येक द्वीपविश्व म इतना अधिक द्रव्य या पदार्थ होता है जो करोडो नक्षत्रो का सृजन करन म समथ है।[2] प्रत्येक नीहारिका की नियति इसी पदार्थ, पर आधारित है। यहाँ पर यह सकेत करना आवश्यक है कि नीहारिकाओ की जितनी दूरी होगी, उतनी ही गति स व पीछे की ओर भागेगी। नीहारिकाओ के इस विस्तार एव सकुचन के कारण इस ब्रह्माण्ड को कपनशील विश्व (आसिलेटिंग युनिवर्स) भी कहते हैं। सत्य नीहारिकाओ का यह विस्तार ही विस्तरणशील ब्रह्माण्ड का स्वरुप है।

विस्तरणशील ब्रह्माण्ड के चारो ओर यह प्रभामण्डल उसे एक मिथक का स्वरूप प्रदान करता है। विस्तरणशील ब्रह्माण्ड का मिथक अनेक प्रश्न उपस्थित करता है जो इस मिथक को व्यापकता प्रदान करता है। फ्रेड हॉयल का यह कहना कि नक्षत्र विज्ञान ने जिन रहस्यमय आश्चर्यों को उद्घाटित किया है वे हमारी सौन्दर्य चेतना को विस्तार देते है और यह सिद्ध करते हैं कि यह सौन्दय किसी कलात्मक सौन्दय स कम नही है।[3] ब्रह्माण्ड का यह

१ साइस ऐण्ड दि माडर्न वर्ल्ड, ए० एन० ह्वाइटहेड, पृ० १४१
२ दि लिमिटेशन्स आफ साइस, सूलीवेन, पृ० ३१
३ दि नेचर आफ युनिवर्स, फ्रेड हायल, पृ० ६८-६६

विस्तारमूलक रहस्य, मानव और उसकी धरती के सापेक्ष सम्बन्ध को रेखांकित करता है और यह स्पष्ट करता है कि असख्य ब्रह्माण्डो की सापेक्षता म मानव और पृथ्वी एक नगण्य अशमात्र है। इस अनुपात को ध्यान म रखकर मानव के अस्तित्व पर एक प्रश्नचिह्न लग जाता है। क्या मानव का अस्तित्व सकट में है ? क्या उसका अस्तित्व किसी सुरक्षा की माँग करता है ? ये कुछ प्रश्न उभर कर आते हैं।

यदि इन प्रश्नो का उत्तर प्राप्त करना है तो हम एक आवश्यक 'भ्रम' स गुजरना पडेगा। इस विराट विश्व म मानवीय अस्तित्व एक भ्रमात्मक धारणा है। अनक ब्रह्माण्डो का सृजन और विलय इस बात की पुष्टि करता है कि हमारा ब्रह्माण्ड भी न जान कब उस विनाश प्रक्रिया का अग बन जाए ? यहाँ पर हायल यह कहता है कि इस खतरे के कारण अनेक मनुष्य एसे भी हो सकते ह जिन्ह एक ऐस विश्वास की आवश्यकता हो जो उन्ह सुरक्षा की भावना प्रदान कर सके। इसम कोई आश्चर्य नहीं है कि ऐसे मनुष्य मुझ पर क्रोधित हो जाए जिससे मैं यह कहूँ कि यह सुरक्षा की भावना भी 'भ्रमात्मक' है।[1] मेरी यह मान्यता है कि यह भ्रमात्मक दशा भी आवश्यक है क्योंकि मानव की चेतना इस अन्तिम प्रत्यय' की धारणा म आकर इसी आवश्यक भ्रमात्मक स्थिति का ग्रहण करती है। वास्तव म, ईश्वर, गाड, परमतत्व जैस प्रत्यय इसी आवश्यक भ्रमात्मक स्थिति के फल ह। दूसरी ओर, यह 'भ्रम' होन हुए भी हमारी आस्तिकता का विराम है जहाँ पर हम सुरक्षा की भावना प्राप्त होती है।

विस्तरणशील विश्व एक अन्य तत्व की ओर सकेत करता ह। विश्व का विस्तार दिक काल के चतुआयामिक विस्तार मे आबद्ध है, और इसी से विश्व या ब्रह्माण्ड की 'गहनता' किसी न किसी अन्तिम इकाई या 'सत्य' की माग करती है। यह तथ्य किसी न किसी ऐसे ब्रह्माण्डीय दशक या भविता की प्राक्कल्पना करता है जिसका शरीर सतत विस्तरणशील है। इडिंगटन ने इसी से, एक ब्रह्माण्डीय भविता (कास्मिक बादल) की कल्पना की ह जिसका शरीर 'अन्तर-नीहारिकीय—निक'से निर्मित हुआ ह।[2] यह धारणा एक प्रकार से मिथकीय धारणा के निकट है जो सत्य और मिथक के अन्यान्य सक्रमण की ओर ध्यान आकर्षित करता है। □ □

१ नचर आफ युनिवस, फ्रेड हायल, पृ० ९९-१००

२ इक्सपैंडिंग युनिवस, इडिंगटन, पृ० १५६

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर मिथक दर्शन की व्यापकता और गतिशीलता का एक ऐसा रूप प्राप्त होता है जो मिथक का केवल 'पुरातन' या 'प्राचीन' के घेरे से निकाल कर आधुनिक ज्ञान विज्ञान और ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रक्रिया से भी जोड़ता है। मैंने मिथक का इसी गतिशीलता का रेखांकित करने का प्रयत्न किया है और मेरी यह मान्यता है (वह भी अन्तिम नहीं) कि मिथक की एक अपनी सार्वभौम सत्ता है जिसे किसी भी जाति या देश की सांस्कृतिक प्रक्रिया से अलग नहीं किया जा सकता है। कहीं न कहीं और किसी न किसी स्तर पर व्यक्ति और 'जाति' को यह एहसास होता है कि व्यक्ति और जाति (देश) की अस्मिता इस मिथिक चेतना से गहरी जुड़ी हुई है। यह कहना भी एक तरह से न्यायसंगत होगा कि 'अस्मिता' और 'मिथक' का एक ऐसा संबंध है जो भाषा और अर्थ का है। हम अपनी अस्मिता को अथवा व्यापक अर्थ में 'अपने' 'होने' के अर्थ को मिथकों और प्रतीकों के द्वारा ही जानते और अनुभव करते हैं। यह तथ्य हीरो, सृष्टि तथा इतिहास-मिथकों के विवेचन के द्वारा स्पष्ट प्रतीत होता है जहाँ 'व्यक्ति और जाति' का होना और उसकी अस्मिता का क्रमश: साक्षात्कार होना एक ऐसा 'क्रम' है जो सदा से चलता आ रहा है और चलता रहेगा।

इसी के साथ एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व की ओर ध्यान जाता है और वह है मिथक की एक तात्विक विवेचना। यह एक तथ्य है कि मिथ की व्याख्या अनेक अर्थ-स्तरों को प्रकट करती है जो मिथक को अनेक आयामी बनाती है। ये अर्थ के विभिन्न स्तर मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, भाषिक और दार्शनिक हो सकते हैं जो अन्ततः ऐतिहासिक परिवर्तन में उद्भूत 'वैचारिकता' को रेखांकित करते हैं। यहाँ यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि विवेचन की दृष्टि सदैव आधुनिक होता है और यही कारण है कि मिथक का विवेचन और उनके अर्थ स्तर आधुनिक ज्ञान विज्ञान से उद्भूत दृष्टि या 'एप्रोच' के परिचायक हैं। मिथकीय व्याख्याओं के अन्तर्गत यह 'दृष्टि' काम करती है जिसे मैंने सन्तुलित रूप से लेने का प्रयत्न किया है। मिथ की इस समग्र या तात्विक दृष्टि में मानसिक एवं बौद्धिक प्रक्रियाओं का अपना विशेष हाथ है क्योंकि 'मनस्' के विकास और गति से इन मिथकों, प्रतीकों और शब्दों का सम्बन्ध है। यही

कारण है कि मेरे सारे विवेचन में 'मिथक' की प्रक्रियाओं की ओर एक 'आग्रह' अवश्य है, पर उस 'पूर्वाग्रह' के रूप में मैं स्वीकार नहीं करता हूँ। 'आग्रह' भी सत्यात्मक प्रत्यय है जो विचार और धारणा के प्रकाश में परिवर्तित एवं परिवर्द्धित हो सकते हैं। मिथकीय विवेचन में मैंने 'आग्रह' को इसी रूप में ग्रहण किया है जो मेरी 'दृष्टि-विकास' का एक अंग है।

इस सम्बन्ध में मैं उस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा कि आधुनिक मिथक का मेरा विवेचन कुछ विवादास्पद हो सकता है क्योंकि 'मिथक' शब्द के प्रयोग के साथ जो 'प्राचीनता' और 'आदिम मनोभावों' से जोड़ने का प्रयत्न किया जाता है, इस धारणा को मैं स्वीकार नहीं कर सका हूँ। यही कारण है कि आधुनिक मिथक की सृजन प्रक्रिया को मैंने अपने तरीके से विवेचित किया है जो मिथक के व्यापक सन्दर्भ को रेखांकित करता है। इस दृष्टि से इतिहास, जनवादी मिथक और विज्ञान के कुछ मिथकों का विवेचन यह सिद्ध करता है कि मिथक सृजन एक निरन्तर प्रक्रिया है जो प्रत्येक ऐतिहासिक परिवर्तन के साथ 'जन्म' लेती है। यह सही है कि आधुनिक मिथक की सृजन प्रक्रिया को स्थापित किया गया है, पर ऐसे मिथकों की संख्या कम ही है, इसी से विज्ञान और इतिहास के मिथक, जो मुझे काफी स्पष्ट लगे, उन्हीं का विवेचन किया गया है। यह विवेचन केवल एक 'पूर्वारम्भ' है जो भावी सम्भावनाओं की ओर संकेत करता है। यह किसी भी रूप में न अन्तिम है और न पूर्ण। पर इतना अवश्य है कि विचारकों को यह विवेचन सोचने के लिए अवश्य प्रेरित करेगा, मेरा केवल यही मन्तव्य है जहाँ तक आधुनिक मिथकों का प्रश्न है।

इसी के साथ यह भी स्वयंसिद्ध है कि मिथक एक नित्य प्रक्रिया है जो आदिकाल से लेकर आज तक घटित हो रही है। इस विकास-क्रम में आदि या प्राचीन का अपना महत्व है क्योंकि मानसिक विकास की दृष्टि से उसे नकारा नहीं जा सकता है। मेरे विवेचन में 'आदिम' और 'आधुनिक' को एकसूत्र में अनुस्यूत करने का प्रयत्न है और इसी से, मिथक मेरे लिए न वायवी है और न अतार्किक, पर वह सांस्कृतिक प्रक्रिया का एक ऐसा अभिन्न अंग है जो मानव के मानसिक विकास क्रम को एक विशेष सदर्भ में रेखांकित करता है। मानवशास्त्रियों ने मिथक को आदिम माना है और उसे एक प्रकार से बर्बर (सैवेज) भी कहा है, उसे मैं इसलिये स्वीकार करने में असमर्थ हूँ कि कहीं न कहीं अमरिकी, फ्रांसीसी और अंग्रेजी नृतत्वशास्त्रियों के मन में यह अन्तर अवश्य कार्य

करता रहा है कि तथाकथित 'सभ्य' कहे जाने वाले हम लोग उनसे अलग भी हैं और अधिक विकसित, और इस प्रकार कॉलिंगवुड ने जो बात 'जादू' को लेकर इन नृतत्वशास्त्रियों के बारे में कही थी, वही बात मिथक के बारे में भी सत्य है। इसका यह कहना है कि यह प्रवृत्ति अपने को ऊँचा तथा अपने अहं को किसी न किसी रूप में तुष्टि करने का अप्रत्यक्ष रूप है।[1] जादू (यातु, अनुष्ठान) आदिम होते हुए भी, मानव सभ्यता के अभिन्न अंग हैं जिनका अस्तित्व आज भी वर्तमान है। फिर दूसरी बात यह है कि जादू को हम 'आभासी' विज्ञान सूडोसाइंस) भी कहा है जो वैज्ञानिक प्रवृत्ति का आदिरूप भी कहा जाता है। इस सारे विवेचन के प्रकाश में मिथक की एक अपनी 'सत्ता' है जो मानव अस्मिता से गहरी जुड़ी हुई है।

इसी के साथ मिथक के बारे में यह भी पूर्वाग्रह कि मिथक शब्द का अर्थ सीमित है, वह आदिम है, कम से कम मैं मिथक का एक व्यापक संदर्भ में देखता हूँ और साथ ही उनकी सृजन प्रक्रिया को ज्ञान और इतिहास की सापेक्षता में स्वीकार करता हूँ। इस अर्थ में प्रतीक और मिथक का एक गहरा सम्बन्ध है क्योंकि सामान्यतः मिथक का अस्तित्व इन प्रतीकों (शब्दों) पर ही आश्रित रहता है। भाषा और मिथक का यह अन्योन्य सम्बन्ध अनादिकाल से चला आ रहा है। भाषा और प्रतीक का एक बहुत बड़ा क्षेत्र ऐसा है जो संकल्पनाओं और अवधारणाओं को आकार देता है, और मिथकीय संकल्पनाएँ भी भाषिक रूपाकारों के द्वारा व्यक्त होती है। यदि गहराई से देखा जाय तो मिथक और भाषा का वही सम्बन्ध है जो ज्ञान और भाषा का है। मैं इसे व्यापक अर्थ में कहूँ तो मिथक सरचना भी एक ज्ञानात्मक प्रक्रिया का अंग है। उसका सम्बन्ध भाषिक रूपाकारों से इतना निकट का हो जाता है। जो मिथक और भाषा के गत्यात्मक सम्बन्ध को ही रेखांकित करता है। व्याकरणिक तत्वों के द्वारा हम मिथक के अर्थ संदर्भ को एक सीमा तक समझ सकते हैं, पर मुझे ऐसा लगता है कि मिथक-दर्शन के व्यापक स्वरूप को यह पद्धति पूरी तरह से विवेचित नहीं कर सकती है। यही कारण है कि मिथकीय विवेचन एवं समझ के लिए एक तात्विक दृष्टि की अपेक्षा किसी न किसी स्तर पर पड़ती है। इसी दृष्टि के द्वारा मिथक के सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को हृदयंगम किया जा सकता है।

□ □

---

१ कला के सिद्धान्त, कॉलिंगवुड, पृ० ४७-४८

परिशिष्ट

नामानुक्रम

अय्यर, आनन्द कृष्णा—६०
अरविन्द—७७, ११२
आइस्टाइन—११४
इलियट, टी० एम०—१०६
इंडिंगटन, आर्थर—११६
एपीकारमस—११
कॉलिंगवुड—११८
कार्स, डेविड—१८, २३
केप्लर—११४
कैशिरर—१३, १६, १७, १८, ४२, ७१, ८७
गोल्डन वीजर—३७
थियोगोनस—११
दुर्खीम—३७, ३८
न्यूमॉन (एरिक)—८४, ८१
न्यूटन—११४
प्रजापति—२
प्लेटो—७८
फ्रायड—१८, २५, ३३, ३७, ४२, ८५
फ्रेजर –१५, ३३, ३४, ३५, ४२, ८०, ८३
ग्रील—१२
ब्राउन—३७
ब्रहल, लीवी—१८
बाशा—१०
मार्क्स—१०३, १११
मैक्समूलर—११, १२, १३, १४, १५, ३३
मैलिनोवस्की—३३, ३८, ४०, ४१, ८०, ८५

मूरे, गिल्बर्ट—३४
यास्क—११
यूहीमरस—१८
युग, सी० जे०—१८, २१-२५, २७, ३१, ३२, ४८, ६८, ७८, ८०, ८३, ८५, ८१
रसेल बर्टेण्ड—१०२, १०७, ११०
लीनिस—१०६
लीवी स्ट्रोस—३३, ३८, ४०, ४१, ४२, ४३, ५१, ५७, ८८
लैग, एड्रयू—१४
लीकॉम्टे ड्यू नू—११२
सिके, ई० १५
स्विगवुड, एलन—१०८
हक्सले, जूलियन—११२
हाब्रेल—३७
हायल, फ्रेड—११५, ११६
हीगेल—१११
हीराक्लिटस—११
हेरीसन, जे०—३४
होमर—५, ११, १२

शब्दानुक्रम

अन्तर अनुशासनीय—५२, ५३
अभौतिक तत्व (नॉन मैटेरियल)—१
अनीमा—२८, ३०, ८१
अवतार—६७, ७३, ७४, ८४, १०४
अग्रिड्रिल—५५
आदिरूप (आरकीटाइप)—२५, ३१, ४८, ६४, ६८, ७१, ७५, ७८, ८०, ८१, ८३, ८६, ८७
आभासी विज्ञान (सूडो साइंस)—११८
आदम हौवा (एडम ईव)—८७
इडीपस ग्रन्थि—४०, ४३, ८०, ८५, ८६
इलीट—१०६, १०७
ईयर—११

ईसिस—५६
ईड, इगो, सुपर इगो १८
एफ्रोडाइट—६८
एलिस—६८
एडोनिस—८३
एथीन—८६
ओल्ड टेस्टामेंट—२१
ओसटिस, ६८, ८३
कथारूपक (एलीगरी)—१०, ४७
कम्पनशील विश्व—१२६
कुंडलिनी योग—६७
गिलौमिस—७०, ८०
गोत्र—५८
गोलक—६३, ६५, ७१, ७४, ११३
छाया (शैडो)—२५
जनवादी संस्कृति—१०५, ११०
जडात्मवाद (एलीमिज्म)—३३, ३४, ३८
ज्यूडीवाद—१०२, १०३
जीवाश्म—५०
टोटम—१६, ३४, ३७, ३८, ५१, ५८-६१
टैबू—१६, ३७, ३८
त्रिमूर्ति—७४, ७५, ७६
दिक्काल—१, ४६, ७१, ७२, ८२, ११४-११७
दिवास्वप्न—२०
द्वीपविश्व—११५
नीहारिका—११३, ११५
पवित्र, कौमाय—७८
प्रभामण्डल (फिरशान)—४, ५, ५१, ८६, ८८, १००, १०२, १०५
प्रागतार्किक—१२, १५, १८, ३४, ४८, ८५, ८७, ११२
फैन्टेसी—२०, २१, २८, १००,

ब्रह्मशास्त्र—३६
मनस्—१८, २०, २२, २५, ११७
महामाता—२३, ३०, ६४, ६५, ६८-७०, ७४, ७५, ७६, ८०, ८१, ८३, ८७, ६०
महाप्रलय—७८
माइक्रोकाज्म (पिण्ड)—११३
मैक्रोकाज्म (ब्रह्माण्ड)—११३
मातृदेवियाँ—२४
यातु—१६, १८, ३१, ३४, ३६, ५१, ६६, ८०, ६१, ६२, ११६
रेखीय (लीनियर) ८०, ११४
लीबिडो—२५, ८५
लोगॉस—७८
मसूचन सिद्धान्त—४१
सैमेटिक—२०
सापेक्षवाद—११४, ११५
हामोसिम्बालिक्स—१, ६२

सन्दर्भ ग्रन्थ

१—इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, भाग १५, स० विलियम बेंटन
२—एनालिसिस आफ माइंड, बर्ट्रेण्ड रसेल
३—एन ऐसे ऑन मैन, अर्नेस्ट कैसिरर
४—एंथ्रापॉलोजी, गोल्डन वीज़र
५—ओरिजिन एण्ड हिस्ट्री आफ काशेसनेस, एरिक न्यूमान
६—कस्टम एण्ड मिथ, एंड्रयू लैंग
७—कल्चर एण्ड सोसायटी, विलियम्स
८—कला के सिद्धान्त, आर० जी० कलिंगवुड (अनूदित)
६—करेंट एंथ्रापालोजी, स० विलियम एल० थामस
१०—क्लाद लेवी स्त्रास, स० ई० नल्सन ह्यूस
११—गोल्डन बो, भाग १ और १२, जे० जी० फ्रेजर
१२—दि प्रिमिटिव रीडर, स० जॉन ग्रीनवे
१३—दि माइंड आफ दि प्रिमटिव मैन, फ्रेज बास
१४—दि स्टडी आफ मिथ एण्ड टोटमिज्म, एडमंड लीच
१५—दि रा ऐण्ड दि कुक्ड, क्लाद् लेवी स्त्रास
१६—दि मिथ आफ दि मॉस कल्चर, एलन स्विंगवुड

१७—दि यूनिटी एण्ड डाइवर्सिटी आफ लाइफ, जे० हक्सले
१८—दि साइंटिफिक एडवेंचर, हर्बर्ट डिंगिल
१९—दि नेचर आफ युनिवर्स, फ्रेड हॉयल
२०—दि फिलासफी आफ फिजिकल साइंस, आर्थर इडिंगटन
२१—दि लिमिटेशन्स आफ साइंस, जे० एन० सूलीवेन
२२—नृतत्व और समाज दर्शन, खण्ड २, स० दयाकृष्णा, गोविन्द चन्द्र पाण्डेय

२३—नार्थ अमरीकन माइथोलॉजी, एच० जी० एलेक्जेंडर
२४—पुरानाज़ इन दि लाइट आफ माडर्न साइंस, के० ए० अय्यर
२५—प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, जगदीश गुप्त
२६—प्रिमिटिव कल्चर, टेलर
२७—फिलासफी इन ए न्यू की, सूसेन के० लेगर
२८—फिलासफिकल एसपेक्ट्स आफ माडर्न साइंस, स० सी० ई० एम० जोड

२९—भारतीय प्रतीक विद्या, जनार्दन मिश्र
३०—माडर्न साइकोलॉजी, डेविड फाक्स
३१—माइथालॉजी, स० पेयरी मेरान्डा
३२—मिथक और यथार्थ डी० डी० कौसाम्बी
३३—मिथ आफ दि बर्थ आफ हीरो, ऑटो रैंक
३४—मिथ एण्ड रिच्युलिज्म इन एंशेंट ईजिप्ट, ब्लैकमैन
३५—मैन एण्ड हिज वर्क्स' जे० हसकोविट्स
३६—लोक साहित्य और संस्कृति, दिनेश्वर प्रसाद
३७—लैंगवेज ऐण्ड मिथ, कैशिरर
३८—लैंगवेज एण्ड रियाल्टी, डब्लू० एम० अरबन
३९—विदेशों के महाकाव्य (बुक आफ ईपिक्स) अनुवादक गोपीकृष्ण
४०—वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि, बर्ट्रेंड रसेल (अनु०)
४१—वीमेन्स मिस्ट्री, एम० हार्डिंग
४२—सामाजिक मानव शास्त्र की रूपरेखा, रवीन्द्रनाथ मुकर्जी
४३—संस्कृति और मानव शास्त्र (भाग १) रांगेय राघव
४४—साइकोलाजी आफ दि अनकान्शेस, सी० जी० युंग
४५—साइकोलाजी आफ दि ट्रांसफेरन्स, सी० जी० युंग

४६—साइकोलाजी ऐण्ड एलकैमी, सी० जी० यग
४७—साइस ऐण्ड दि माडर्न वर्ल्ड, ए० एन० ह्वाइटहेड
४८—ह्यूमन डेस्टनी, लीकाम्टे डु नू
४६—हिस्ट्री आफ एस्थिटिक्स, बोशाँ
५०—हिंदी साहित्य का आदिकाल, हजारीप्रसाद द्विवेदी
५१—हिरोयिक पोयटरी, सी० एम० बावरा
५२—हिस्ट्री आफ वेस्टर्न फिलासफी, बर्ट्रेंड रसेल

